# .. Dnyaneshvari or Bhavarthadipika Chapter 13 ..
## ॥ ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका अध्याय १३ ॥

॥ ॐ श्री परमात्मने नमः ॥
अध्याय तेरावा ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगः ।

आत्मरूप गणेशु केलिया स्मरण। सकळ विद्यांचें अधिकरण। तेचि वंदूं श्रीचरण। श्रीगुरूंचे ॥ १॥
जयांचेनि आठवें। शब्दसृष्टि आंगवे। सारस्वत आघवें। जिव्हेसि ये ॥ २॥
वक्तृत्वा गोडपणें। अमृतातें पारुखें म्हणे। रस होती वोळंगणें। अक्षरांसी ॥ ३॥
भावाचें अवतरण। अवतरविती खूण। हाता चढे संपूर्ण। तत्त्वभेद ॥ ४॥
श्रीगुरूंचे पाय। जैं हृदय गिंवसूनि ठाय। तैं येवढें भाग्य होय। उन्मेखासी ॥ ५॥
ते नमस्कारूनि आतां। जो पितामहाचा पिता। लक्ष्मीयेचा भर्ता। ऐसें म्हणे ॥ ६॥

श्रीभगवानुवाच ।
इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १॥

तरी पार्था परिसिजे। देह हें क्षेत्र म्हणिजे। जो हें जाणे तो बोलिजे। क्षेत्रज्ञु एथें ॥ ७॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २॥

तरि क्षेत्रज्ञु जो एथें। तो मीचि जाण निरुतें। जो सर्व क्षेत्रांतें। संगोपोनि असे ॥ ८॥
क्षेत्र आणि क्षेत्रज्ञातें। जाणणें जें निरुतें। ज्ञान ऐसें तयातें। मानूं आम्ही ॥ ९॥

तत् क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत् समासेन मे श्रुणु ॥ ३॥

तरि क्षेत्र येणें नावें। हें शरीर जेणें भावें। म्हणितलें तें आघवें। सांगों अतां ॥ १०॥
हें क्षेत्र का म्हणिजे। कैसें कें उपजे। कवणाकवणीं वाढविजे। विकारीं एथ ॥ ११॥
हें औट हात मोटकें। कीं केवढें पां केतुकें। बरड कीं पिके। कोणाचें हें ॥ १२॥
इत्यादि सर्व। जे जे याचे भाव। ते बोलिजती सावेव। अवधान देई ॥ १३॥
पैं याचि स्थळाकारणें। श्रुति सदा बोबाणे। तर्कु येणेंचि ठिकाणें। तोंडाळु केला ॥ १४॥
चाळिता हेचि बोली। दर्शनें शेवटा आलीं। तेवींचि नाहीं बुझविली। अझुनि द्वंद्वं ॥ १५॥

शास्त्रांचिये सोयरिके। विचळिजे येणेंचि एकें। याचेनि एकवंकें। जगासि वादु ॥१६/ ।
तोंडेसीं तोंडा न पडे। बोलेंसीं बोला न घडे। इया युक्ती बडबडे। न्राय जाहली ॥१७॥
नेणों कोणाचें हें स्थळ। परि कैसें अभिलाषाचें बळ। जेघरोघरीं कपाळ। पिटवीत असे ॥१८॥
नास्तिका द्यावया तोंड। वेदांचें गाढें बंड। दे देखोनि पाखांड। आनचि वाजे ॥१९॥
म्हणे तुम्ही निर्मूळ। लटिकें हें वाग्जाळ। ना म्हणसी तरी पोफळ। घातलें आहे ॥२०॥
पाखांडाचे कडे। नागवीं लुंचिती मुंडे। नियोजिली वितंडें। ताळासि येती ॥२१॥
मन्त्युबळाचेनि माजें। हें जाईल वीण काजें। तें देखोनियां व्याजें। निघाले योगी ॥२२॥
मन्त्यूनि आधाधिले। तिहीं निरंजन सेविलें। यमदमांचे केले। मेळावे पुरे ॥२३॥
येणेंचि क्षेत्राभिमानें। राज्य त्यजिलें ईशानें। गुंति जाणोनि स्मशानें। वासु केला ॥२४॥
ऐसिया पैजा महेशा। पांघुरणें दाही दिशा। लांचकरू म्हणोनि कोळसा। कामु केला ॥२५॥
पैं सत्यलोकनाथा। वदनें आलीं बळार्था। तरी तो सर्वथा। जाणेचिना ॥२६॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥४॥

एक म्हणती हें स्थळ। जीवाचेंचि समूळ। मग प्राण हें कूळ। तयाचें एथ ॥२७॥
जे प्राणाचे घरीं। अंगें राबती भाऊ चारी। आणि मना ऐसा आवरी। कुळवाडीकरु ॥२८॥
तयातें इंद्रियबैलांची पेटी। न म्हणे अंवसीं पाहाटीं। विषयक्षेत्रीं आटी। काढी भली ॥२९॥
मग विधीची वाफ चुकवी। आणि अन्यायाचें बीज वाफवी। कुकर्माचा करवी। राबु जरी ॥३०॥
तरी तयाचिसारिखें। असंभड पाप पिके। मग जन्मकोटी दुःखें। भोगीं जीवु ॥३१॥
नातरी विधीचिये वाफे। सत्क्रिया बीज आरोपे। तरी जन्मशताचीं मापें। सुखचि मवीजे ॥३२॥
तंव आणिक म्हणती हें नव्हे। हें जिवाचेंचि न म्हणावें। आमुतें पुसा आघवें। क्षेत्राचें या ॥३३॥
अहो जीवु एथ उखिता। वस्तीकरु वाटे जातां। आणि प्राणु हा बलौता। म्हणौनि जागे ॥३४॥
अनादि जे प्रकृती। सांख्य जियेतें गाती। क्षेत्र हे वृत्ती। तियेची जाणा ॥३५॥
आणि इयेतेंचि आघवा। आथी घरमेळावा। म्हणौनि ते वाहिवा। घरीं वाहे ॥३६॥
वाह्याचिये रहाटी। जे कां मुद्दल तिघे इये सृष्टीं। ते इयेच्याचि पोटीं। जहाले गुण ॥३७॥
रजोगुण पेरी। तेतुलें सत्त्व सोंकरी। मग एकलें तम करी। संवगणी ॥३८॥
रचूनि महत्तत्त्वाचें खळें। मळी एके काळुगेनि पोळें। तेथ अव्यक्ताची मिळे। सांज भली ॥३९॥
तंव एकीं मतिवंतीं। या बोलाचिया खंतीं। म्हणितलें या ज्ञप्ती। अर्वाचीना ॥४०॥
हां हो परतत्त्वाआंतु। कें प्रकृतीची मातु। हा क्षेत्र वृत्तांतु। उगेंचि आइका ॥४१॥
शून्यसेजेशालिये। सुलीनतेचिये तुळिये। निद्रा केली होती बळियें। संकल्पें येणें ॥४२॥
तो अवसांत चेइला। उद्यमीं सदैव भला। म्हणौनि ठेवा जोडला। इच्छावशें ॥४३॥
निरालंबींची वाडी। होती त्रिभुवनायेवढी। हे तयाचिये जोडी। रूपा आली ॥४४॥
मग महाभूतांचें एकवाट। सैरा वेंटाळूनि भाट। भूतग्रामांचे आघाट। चिरिले चारी ॥४५॥
यावरी आदी। पांचभूतिकांची मांदी। बांधली प्रभेदीं। पंचभूतिकीं ॥४६॥

कर्माकर्मांचे गुंडे। बांध घातले दोहींकडे। नपुंसकें बरडें। रानें केलीं ॥ ४७॥
तेथ येरझारेलागीं। जन्ममृत्यूची सुरंगी। सुहाविली निलागी। संकल्पें येणें ॥ ४८॥
मग अहंकारासि एकलाधी। करूनि जीवितावधी। वहाविलें बुद्धि। चराचर ॥ ४९॥
यापरी निराळीं। वाढे संकल्पाची डाहाळी। म्हणौनि तो मुळीं। प्रपंचा यया ॥ ५०॥
यापरी मत्तमुगुतकीं। तेथ पडिघायिलें आणिकीं। म्हणती हां हो विवेकीं। कैसें तुम्ही ॥ ५१॥
परतत्त्वाचिया गांवीं। संकल्पसेज देखावी। तरी कां पां न मनावी। प्रकृति तयाची ? ॥ ५२॥
परि असो हें नव्हे। तुम्ही या न लगावें। आतांचि हें आघवें। सांगिजैल ॥ ५३॥
तरी आकाशीं कवणें। केलीं मेघाचीं भरणें। अंतरिक्ष तारांगणें। धरी कवण ? ॥ ५४॥
गगनाचा तडावा। कोणें वेढिला केधवां। पवनु हिंडतु असावा। हें कवणाचें मत ? ॥ ५५॥
रोमां कवण पेरी। सिंधू कवण भरी। पर्जन्याचिया करी। धारा कवण ? ॥ ५६॥
तैसें क्षेत्र हें स्वभावें। हे वृत्ती कवणाची नव्हे। हें वाहे तया फावे। येरां तुटे ॥ ५७॥
तंव आणिकें एकें। क्षोभें म्हणितलें निकें। तरी भोगिजे एकें। काळें केवीं हें ? ॥ ५८॥
तरी ययाचा मारु। देखताति अनिवारु। परी स्वमतीं भरु। अभिमानियां ॥ ५९॥
हें जाणों मृत्यु रागिटा। सिंहाडयाचा दरकुटा। परी काय वांजटा। पूरिजत असे ? ॥ ६०॥
महाकल्पापरौतीं। कव घालूनि अवचितीं। सत्यलोकभद्रजाती। आंगीं वाजे ॥ ६१॥
लोकपाळ नित्य नवे। दिग्गजांचे मेळावे। स्वर्गींचिये आडवे। रिगोनि मोडी ॥ ६२॥
येर ययाचेनि अंगवातें। जन्ममृत्यूचिये गर्तें। निर्जिवें होऊनि भ्रमतें। जीवमृगें ॥ ६३॥
न्याहाळीं पां केव्हडा। पसरलासे चवडा। जो करूनियां माजिवडा। आकारगजु ॥ ६४॥
म्हणौनि काळाची सत्ता। हाचि बोलु निरुता। ऐसे वाद पंडुसुता। क्षेत्रालागीं ॥ ६५॥
हे बहु उखिविखी। ऋषीं केली नैमिषीं। पुराणें इयेविषीं। मतपत्रिका ॥ ६६॥
अनुष्टुभादि छंदें। प्रबंधीं जें विविधें। ते पत्रावलंबन मदें। करिती अझुनी ॥ ६७॥
वेदींचें बृहत्सामसूत्र। जें देखणेपणें पवित्र। परी तयाही हें क्षेत्र। नेणवेचि ॥ ६८॥
आणीक आणीकींही बहुतीं। महाकवीं हेतुमंतीं। ययालागीं मती। वेंचिलिया ॥ ६९॥
परी ऐसें हें एवढें। कीं अमुकेयाचेंचि फुडें। हें कोणाही वरपडें। होयचिना ॥ ७०॥
आतां यावरी जैसें। क्षेत्र हें असे। तुज सांगों तैसें। साद्यंतु गा ॥ ७१॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ ५॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६॥

तरि महाभूतपंचकु। आणि अहंकारु एकु। बुद्धि अव्यक्त दशकु। इंद्रियांचा ॥ ७२॥
मन आणीकही एकु। विषयांचा दशकु। सुख दुःख द्वेषु। संघात इच्छा ॥ ७३॥
आणि चेतना धृती। एवं क्षेत्रव्यक्ती। सांगितली तुजप्रती। आघवीची ॥ ७४॥

आतां महाभूतें कवणें। कवण विषयो कैसीं करणे। हें वेगळालेपणें। एकैक सांगों ॥ ७५॥
तरी पृथ्वी आप तेज। वायु व्योम इयें तुज। सांगितलीं बुझ। महाभूतें पांचें ॥ ७६॥
आणि जागतिये दशे। स्वप्न लपालें असे। नातरी अंवसे। चंद्र गूढ ॥ ७७॥
नाना अप्रौढबाळकीं। तारुण्य राहे थोकीं। कां न फुलतां कळिकीं। आमोदु जैसा ॥ ७८॥
किंबहुना काष्ठीं। वन्हि जेवीं किरीटी। तेवीं प्रकृतिचिया पोटीं। गोप्यु जो असे ॥ ७९॥
जैसा ज्वरु धातुगतु। अपथ्याचें मिष पहातु। मग जालिया आंतु। बाहेरी व्यापी ॥ ८०॥
तैसी पांचांही गांठीं पडे। जैं देहाकारु उघडे। तैं नाचवी चहूंकडे। तो अहंकारु गा ॥ ८१॥
नवल अहंकाराची गोठी। विशेषें न लगे अज्ञानापाठीं। सज्ञानाचे झोंबे कंठीं। नाना संकटीं नाचवी ॥ ८२॥
आतां बुद्धि जे म्हणिजे। ते ऐशियां चिन्हीं जाणिजे। बोलिलें यदुराजें। तें आइकें सांगों ॥ ८३॥
तरी कंदर्पाचेनि बळें। इंद्रियवृत्तीचेनि मेळें। विभांडूनि येती पाळे। विषयांचे ॥ ८४॥
तो सुखदुःखांचा नागोवा। जेथ उगाणों लागे जीवा। तेथ दोहींसी बरवा। पाडु जे धरी ॥ ८५॥
हें सुख हें दुःख। हें पुण्य हें दोष। कां हें मैळ हें चोख। ऐसें जे निवडी ॥ ८६॥
जिथे अधमोत्तम सुझे। जिये सानें थोर बुझे। जिया दिठी पारखिजे। विषो जीवें ॥ ८७॥
जे तेजतत्त्वांची आदी। जे सत्त्वगुणाची वृद्धी। जे आत्मया जीवाची संधी। वसवीत असे जे ॥ ८८॥
अर्जुना ते गा जाण। बुद्धि तूं संपूर्ण। आतां आइकें वोळखण। अव्यक्ताची ॥ ८९॥
पैं सांख्यांचिया सिद्धांतीं। प्रकृती जे महामती। तेचि एथें प्रस्तुतीं। अव्यक्त गा ॥ ९०॥
आणि सांख्ययोगमतें। प्रकृती परिसविली तूंतें। ऐसी दोहीं परीं जेथें। विवंचिली ॥ ९१॥
तेथ दुजी जे जीवदशा। तिये नांव वीरेशा। येथ अव्यक्त ऐसा। पर्यावो हा ॥ ९२॥
तऱ्ही पाहालया रजनी। तारा लोपती गगनीं। कां हारपें अस्तमानीं। भूतक्रिया ॥ ९३॥
नातरी देहो गेलिया पाठीं। देहादिक किरीटी। उपाधि लपे पोटीं। कृतकर्माच्या ॥ ९४॥
कां बीजमुद्रेआंतु। थोके तरु समस्तु। कां वस्त्रपणे तंतु-। दशे राहे ॥ ९५॥
तैसे सांडोनियां स्थूळधर्म। महाभूतें भूतग्राम। लया जाती सूक्ष्म। होऊनि जेथे ॥ ९६॥
अर्जुना तया नांवें। अव्यक्त हें जाणावें। आतां आइकें आघवें। इंद्रियभेद ॥ ९७॥
तरी श्रवण नयन। त्वचा घ्राण रसन। इयें जाणें ज्ञान-। करणें पांचें ॥ ९८॥
इये तत्त्वमेळापकीं। सुखदुःखांची उखिविखी। बुद्धि करिते मुखीं। पांचें इहीं ॥ ९९॥
मग वाचा आणि कर। चरण आणि अधोद्वार। पायु हे प्रकार। पांच आणिक ॥ १००॥
कर्मेंद्रियें म्हणिपती। तीं इयें जाणिजती। आइकें कैवल्यपती। सांगतसे ॥ १०१॥
पैं प्राणाची अंतौरी। क्रियाशक्ति जे शरीरीं। तियेचि रिगिनिगी द्वारीं। पांचे इहीं ॥ १०२॥
एवं दाहाही करणें। सांगितलीं देवो म्हणे। परिस आतां फुडेपणें। मन तें ऐसें ॥ १०३॥
जें इंद्रियां आणि बुद्धि। माझारिलिये संधीं। रजोगुणाच्या खांदीं। तरळत असे ॥ १०४॥
नीळिमा अंबरीं। कां मृगतृष्णालहरी। तैसें वायांचि फरारी। वावो जाहलें ॥ १०५॥
आणि शुक्रशोणिताचा सांधा। मिळतां पांचांचा बांधा। वायुतत्त्व दशधा। एकचि जाहलें ॥ १०६॥
मग तिहीं दाहे भागीं। देहधर्माच्या खैवंगीं। अधिष्ठिलें आंगीं। आपुलाल्या ॥ १०७॥
तेथ चांचल्य निखळ। एकलें ठेलें निढाळ। म्हणौनि रजाचें बळ। धरिलें तेणें ॥ १०८॥
तें बुद्धीसि बाहेरी। अहंकाराच्या उरावरी। ऐसां ठायीं माझारीं। बळियावलें ॥ १०९॥
वायां मन हें नांव। एऱ्हवीं कल्पनाचि सावेव। जयाचेनि संगें जीव-। दशा वस्तु ॥ ११०॥

जें प्रवृत्तीसि मूळ। कामा जयाचे बळ। जें अखंड सूये छळ। अहंकारासी ॥ १११॥
जें इच्छेतें वाढवी। आशेतें चढवी। जें पाठी पुरवी। भयासि गा ॥ ११२॥
द्वैत जेथें उठी। अविद्या जेणें लाठी। जें इंद्रियांतें लोटी। विषयांमजी ॥ ११३॥
संकल्पें सृष्टी घडी। सवेंचि विकल्पूनि मोडी। मनोरथांच्या उतरंडी। उतरी रची ॥ ११४॥
जें भुलीचें कुहर। वायुतत्त्वाचें अंतर। बुद्धीचें द्वार। झाकविलें जेणें ॥ ११५॥
तें गा किरीटी मन। या बोला नाहीं आन। आतां विषयाभिधान। भेदू आइकें ॥ ११६॥
तरी स्पर्शु आणि शब्दु। रूप रसु गंधु। हा विषयो पंचविधु। ज्ञानेंद्रियांचा ॥ ११७॥
इहीं पांचैं द्वारीं। ज्ञानासि धांव बाहेरी। जैसा कां हिरवे चारीं। भांबावे पशु ॥ ११८॥
मग स्वर वर्ण विसर्गु। अथवा स्वीकार त्यागु। संक्रमण उत्सर्गु। विण्मूत्राचा ॥ ११९॥
हे कर्मेंद्रियांचे पांच। विषय गा साच। जे बांधोनियां माच। क्रिया धांवे ॥ १२०॥
ऐसे हे दाही। विषय गा इये देहीं। आतां इच्छा तेही। सांगिजैल ॥ १२१॥
तरि भूतलें आठवे। कां बोलें कान झांकवे। ऐसियावरि चेतवे। जे गा वृत्ती ॥ १२२॥
इंद्रियाविषयांचिये भेटी-। सरसीच जे गा उठी। कामाची बाहुटी। धरूनियां ॥ १२३॥
जियेचेनि उठिलेपणें। मना सैंघ धावणें। न रिगावें तेथ करणें। तोंडें सुती ॥ १२४॥
जिये वृत्तीचिया आवडी। बुद्धी होय वेडी। विषयां जिया गोडी। ते गा इच्छा ॥ १२५॥
आणी इच्छिलिया सांगडें। इंद्रियां आमिष न जोडे। तेथ जोडे ऐसा जो डावो पडे। तोचि द्वेषु ॥ १२६॥
आतां यावरी सुख। तें एवंविध देख। जेणें एकेंचि अशेख। विसरे जीवु ॥ १२७॥
मना वाचे काये। जें आपुली आण वाये। देहस्मृतीची त्राये। मोडित जें ये ॥ १२८॥
जयाचेनि जालेपणें। पांगुळा होईजे प्राणें। सात्त्विकासी दुणें। वरीही लाभु ॥ १२९॥
कां आघवियाचि इंद्रियवृत्ती। हृदयाचिया एकांतीं। थापटूनि सुषुप्ती। आणी जें गा ॥ १३०॥
किंबहुना सोये। जीव आत्मयाची लाहे। तेथ जें होये। तया नाम सुख ॥ १३१॥
आणि ऐसी हे अवस्था। न जोडतां पार्था। जें जीजे तेंचि सर्वथा। दुःख जाणे ॥ १३२॥
तें मनोरथसंगें नव्हे। एऱ्हवीं सिद्धी गेलेंचि आहे। हे दोनीचि उपाये। सुखदुःखासी ॥ १३३॥
आतां असंगा साक्षिभूता। देहीं चैतन्याची जे सत्ता। तिये नाम पंडुसुता। चेतना येथें ॥ १३४॥
जे नखौनि केशवरी। उभी जागे शरीरीं। जे तिहीं अवस्थांतरीं। पालटेना ॥ १३५॥
मनबुद्ध्यादि आघवीं। जियेचेनि टवटवीं। प्रकृतिवनमाधवीं। सदांचि जे ॥ १३६॥
जडाजडीं अंशीं। राहाटे जे सरिसी। ते चेतना गा तुजसी। लटिकें नाहीं ॥ १३७॥
पैं रावो परिवारु नेणे। आज्ञाचि परचक्र जिणे। कां चंद्राचेनि पूर्णपणें। सिंधू भरती ॥ १३८॥
नाना भ्रामकाचें सन्निधान। लोहो करी सचेतन। कां सूर्यसंगु जन। चेष्टवी गा ॥ १३९॥
अगा मुख मेळेंवीण। पिलियाचें पोषण। करी निरीक्षण। कूर्मी जेवीं ॥ १४०॥
पार्था तियापरी। आत्मसंगती इये शरीरीं। सजीवत्वाचा करी। उपेगु जडा ॥ ४१॥
मग तियेतें चेतना। म्हणिपे पैं अर्जुना। आतां धृतिविवंचना। भेदु आइक ॥ १४२॥
तरी भूतां परस्परें। उघड जाति स्वभाववैरें। नव्हे पृथ्वीतें नीरें। न नाशिजे ? ॥ १४३॥
नीरातें आटी तेज। तेजा वायूसि झुंज। आणि गगन तंव सहज। वायू भक्षी ॥ १४४॥
तेवींचि कोणेही वेळे। आपण कायिसयाही न मिळे। आंतु रिगोनि वेगळें। आकाश हें ॥ १४५॥
ऐसीं पांचही भूतें। न साहती एकमेकांतें। कीं तियेंही ऐक्यातें। देहासी येती ॥ १४६॥

द्वंद्वाची उखिविखी। सोडूनि वसती एकीं। एकेकातें पोखी। निजगुणें गा ॥ १४७॥
ऐसें न मिळे तयां साजणें। चळे धैर्यें जेणें। तयां नांव म्हणें। धृती मी गा ॥ १४८॥
आणि जीवेंसी पांडवा। या छत्तिसांचा मेळावा। तो हा एथ जाणावा। संघातु पैं गा ॥ १४९॥
एवं छत्तीसही भेद। सांगितले तुज विशद। यया येतुलियातें प्रसिद्ध। क्षेत्र म्हणिजे ॥ १५०॥
रथांगांचा मेळावा। जेवीं रथु म्हणिजे पांडवा। कां अधोर्ध्व अवेवां। नांव देहो ॥ १५१॥
करीतुरंगसमाजें। सेना नाम निफजे। कां वाक्यें म्हणिपती पुंजे। अक्षरांचे ॥ १५२॥
कां जळधरांचा मेळा। वाच्य होय आभाळा। नाना लोकां सकळां। नाम जग ॥ १५३॥
कां स्नेहसूत्रवन्ही। मेळु एकिचि स्थानीं। धरिजे तो जनीं। दीपु होय ॥ १५४॥
तैसीं छत्तीसही इयें तत्त्वें। मिळती जेणें एकत्वें। तेणें समूह परत्वें। क्षेत्र म्हणिपे ॥ १५५॥
आणि वाहतेनि भौतिकें। पाप पुण्य येथें पिके। म्हणौनि आम्ही कौतुकें। क्षेत्र म्हणों ॥ १५६॥
आणि एकाचेनि मतें। देह म्हणती ययातें। परी असो हें अनंतें। नामें यया ॥ १५७॥
पैं परतत्त्वाआरौतें। स्थावराआंतौतें। जें कांहीं होतें जातें। क्षेत्रचि हें ॥ १५८॥
परि सुर नर उरगीं। घडत आहे योनिविभागीं। तें गुणकर्मसंगीं। पडिलें सातें ॥ १५९॥
हेचि गुणविवंचना। पुढां म्हणिपैल अर्जुना। प्रस्तुत आतां तुज ज्ञाना। रूप दावूं ॥ १६०॥
क्षेत्र तंव सविस्तर। सांगितलें सविकार। म्हणौनि आतां उदार। ज्ञान आइकें ॥ १६१॥
जया ज्ञानालागीं। गगन गिळिताती योगी। स्वर्गाची आडवंगी। उमरडोनि ॥ १६२॥
न करिती सिद्धीची चाड। न धरिती ऋद्धीची भीड। योगाऐसें दुवाड। हेळसिती ॥ १६३॥
तपोदुर्गें वोलांडित। क्रतुकोटि वोवांडित। उलथूनि सांडित। कर्मवल्ली ॥ १६४॥
नाना भजनमार्गीं। धांवत उघडिया आंगीं। एक रिगताति सुरंगीं। सुषुम्नेचिये ॥ १६५॥
ऐसी जिये ज्ञानीं। मुनीश्वरांची उतान्ही। वेदतरूच्या पानोवानीं। हिंडताती ॥ १६६॥
देईल गुरुसेवा। इया बुद्धि पांडवा। जन्मशतांचा सांडोवा। टाकित जे ॥ १६७॥
जया ज्ञानाची रिगवणी। अविद्ये उणें आणी। जीवा आत्मया बुझावणी। मांडूनि दे ॥ १६८॥
जें इंद्रियांचीं द्वारें आडी। प्रवृत्तीचे पाय मोडी। जें दैन्यचि फेडी। मानसाचें ॥ १६९॥
द्वैताचा दुकाळु पाहे। साम्याचें सुयाणें होये। जया ज्ञानाची सोये। ऐसें करी ॥ १७०॥
मदाचा ठावोचि पुसी। जें महामोहातें ग्रासी। नेदी आपपरु ऐसी। भाष उरों ॥ १७१॥
जें संसारातें उन्मूळी। संकल्पपंकु पाखाळी। अनावरातें वेंटाळी। ज्ञेयातें जें ॥ १७२॥
जयाचेनि जालेपणें। पांगुळा होईजे प्राणें। जयाचेनि विंदाणें। जग हें चेष्टे ॥ १७३॥
जयाचेनि उजाळें। उघडती बुद्धीचे डोळे। जीवु दोंदावरी लोळे। आनंदाचिया ॥ १७४॥
ऐसें जें ज्ञान। पवित्रैकनिधान। जेथ विटाळलें मन। चोख कीजे ॥ १७५॥
आत्मया जीवबुद्धी। जे लागली होती क्षयव्याधी। ते जयाचिये सन्निधी। निरुजा कीजे ॥ १७६॥
तें अनिरूप्य कीं निरूपिजे। ऐकतां बुद्धी आणिजे। वांचूनि डोळां देखिजे। ऐसें नाहीं ॥ १७७॥
मग तेचि इये शरीरीं। जैं आपुला प्रभावो करी। तैं इंद्रियांचिया व्यापारीं। डोळांहि दिसे ॥ १७८॥
पैं वसंताचें रिगवणें। झाडांचेनि साजेपणें। जाणिजे तेवीं करणें। सांगती ज्ञान ॥ १७९॥
अगा वृक्षासि पाताळीं। जळ सांपडे मुळीं। तें शाखांचिये बाहाळीं। बाहेर दिसे ॥ १८०॥
कां भूमीचें मार्दव। सांगे कोंभाची लवलव। नाना आचारगौरव। सुकुलीनाचें ॥ १८१॥
अथवा संभ्रमाचिया आयती। स्नेहो जैसा ये व्यक्ती। कां दर्शनाचिये प्रशस्तीं। पुण्यपुरुष ॥ १८२॥

नातरी केळीं कापूर जाहला। जेवीं परिमळें जाणों आला। कां भिंगारीं दीपु ठेविला। बाहेरी फांके ॥ १८३॥
तैसें हृदयींचेनि ज्ञानें। जियें देहीं उमटती चिन्हें। तियें सांगों आतां अवधानें। चागें आइक ॥ १८४॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७॥

तरी कवणेही विषयींचें। साम्य होणें न रुचे। संभावितपणाचें। वोझे जया ॥ १८५॥
आथिलेचि गुण वानितां। मान्यपणें मानितां। योग्यतेचें येतां। रूप आंगा ॥ १८६॥
तैं गजबजों लागे कैसा। व्याधें रुंधला मृगु जैसा। कां बाहीं तरतां वळसा। दाटला जेवीं ॥ १८७॥
पार्था तेणें पाडें। सन्मानें जो सांकडे। गरिमेतें आंगाकडे। येवोंचि नेदी ॥ १८८॥
पूज्यता डोळां न देखावी। स्वकीर्ती कानीं नायकावी। हा अमुका ऐसी नोहावी। सेचि लोकां ॥ १८९॥
तेथ सत्काराची कें गोठी। कें आदरा देईल भेटी। मरणेंसीं साटी। नमस्कारितां ॥ १९०॥
वाचस्पतीचेनि पाडें। सर्वज्ञता तरी जोडे। परी वेडिवेमाजीं दडे। महमेभेणें ॥ १९१॥
चातुर्य लपवी। महत्त्व हारवी। पिसेपण मिरवी। आवडोनि ॥ १९२॥
लौकिकाचा उद्वेगु। शास्त्रांवरी उबगु। उगेपणीं चांगु। आथी भरु ॥ १९३॥
जगें अवज्ञाचि करावी। संबंधीं सोयचि न धरावी। ऐसी ऐसी जीवीं। चाड बहु ॥ १९४॥
तळौटेपण बाणे। आंगीं हिणावो खेवणें। तें तेंचि करणें। बहुतकरुनी ॥ १९५॥
हा जीतु ना नोहे। लोक कल्पी येणें भावें। तैसें जिणें होआवें। ऐसी आशा ॥ १९६॥
पै चालतु कां नोहे। कीं वारेंनि जातु आहे। जना ऐसा भ्रमु जाये। तैसें होईजे ॥ १९७॥
माझें असतेपण लोपो। नामरूप हारपो। मज झणें वासिपो। भूतजात ॥ १९८॥
ऐसीं जयाचीं नवसियें। जो नित्य एकांता जातु जाये। नामेंचि जो जिये। विजनाचेनि ॥ १९९॥
वायू आणि तया पडे। गगनेंसीं बोलों आवडे। जीवें प्राणें झाडें। पढियंतीं जया ॥ २००॥
किंबहुना ऐसीं। चिन्हें जया देखसी। जाण तया ज्ञानेंसीं। शेज जाहली ॥ २०१॥
पैं अमानित्व पुरुषीं। तें जाणावें इहीं मिषीं। आतां अदंभाचिया वोळखीसी। सौरसु देवों ॥ २०२॥
तरी अदंभित्व ऐसें। लोभियाचें मन जैसें। जीवु जावो परी नुमसे। ठेविला ठावो ॥ २०३॥
तयापरी किरीटी। पडिलाही प्राणसंकटीं। तरी सुकृत न प्रकटी। आंगें बोलें ॥ २०४॥
खडाणें आला पान्हा। पळवी जेवीं अर्जुना। कां लपवी पण्यांगना। वडिलपण ॥ २०५॥
आढ्यु आतुडे आडवीं। मग आढ्यता जेवीं हारवी। नातरी कुळवधू लपवी। अवेवांतें ॥ २०६॥
नाना कृषीवळु आपुलें। पांघुरवी पेरिलें। तैसें झांकी निपजलें। दानपुण्य ॥ २०७॥
वरिवरी देहो न पूजी। लोकांतें न रंजी। स्वधर्मु वाग्ध्वजीं। बांधों नेणे ॥ २०८॥
परोपकारु न बोले। न मिरवी अभ्यासिलें। न शके विकूं जोडलें। स्फीतीसाठीं ॥ २०९॥
शरीर भोगाकडे। पाहतां कृपणु आवडे। एऱ्हवीं धर्मविषयीं थोडें। बहु न म्हणे ॥ २१०॥
घरीं दिसे सांकड। देहींची आयती रोड। परी दानीं जया होड। सुरतरूसीं ॥ २११॥
किंबहुना स्वधर्मीं थोरु। अवसरीं उदारु। आत्मचर्चे चतुरु। एऱ्हवी वेडा ॥ २१२॥
केळीचें दळवाडें। हळू पोकळ आवडे। परी फळोनियां गाढें। रसाळ जैसें ॥ २१३॥
कां मेघांचें आंग झील। दिसे वारेंनि जैसें जाईल। परी वर्षती नवल। घनवट तें ॥ २१४॥

तैसा जो पूर्णपणीं। पाहतां धाती आयणी। एऱ्हवीं तरी वाणी। तोचि ठावो ॥ २१५ ॥
हें असो या चिन्हांचा। नटनाचु ठायीं जयाच्या। जाण ज्ञान तयाच्या। हातां चढें ॥ २१६ ॥
पैं गा अदंभपण। म्हणितलें तें हें जाण। आतां आईक खूण। अहिंसेची ॥ २१७ ॥
तरी अहिंसा बहुतीं परीं। बोलिली असे अवधारीं। आपुलालिया मतांतरीं। निरूपिली ॥ २१८ ॥
परी ते ऐसी देखा। जैशा खांडूनियां शाखा। मग तयाचिया बुडुखा। कूंप कीजे ॥ २१९ ॥
कां बाहु तोडोनि पचविजे। मग भूकेची पीडा राखिजे। नाना देऊळ मोडोनि कीजे। पौळी देवा ॥ २२० ॥
तैसी हिंसाचि करूनि अहिंसा। निफजविजे हा ऐसा। पैं पूर्वमीमांसा। निर्णो केला ॥ २२१ ॥
जे अवृष्टीचेनि उपद्रवें। गादलें विश्व आघवें। म्हणौनि पर्जन्येष्टी करावे। नाना याग ॥ २२२ ॥
तंव तिये इष्टीचिया बुडीं। पशुहिंसा रोकडी। मग अहिंसेची थडी। कैंची दिसे ? ॥ २२३ ॥
पेरिजे नुसधी हिंसा। तेथ उगवैल काय अहिंसा ?। परी नवल बापा धिंवसा। या याज्ञिकांचा ॥ २२४ ॥
आणि आयुर्वेदु आघवा। तो याच मोहोरा पांडवा। जे जीवाकारणें करावा। जीवघातु ॥ २२५ ॥
नाना रोगें आहाळलीं। लोळतीं भूतें देखिलीं। ते हिंसा निवारावया केली। चिकित्सा कां ॥ २२६ ॥
तंव ते चिकित्से पहिलें। एकाचे कंद खणविले। एका उपडविलें। समूळीं सपत्रीं ॥ २२७ ॥
एकें आड मोडविली। अजंगमाची खाल काढविली। एकें गर्भिणी उकडविली। पुटामाजीं ॥ २२८ ॥
अजातशत्रु तरुवरां। सर्वांगीं देवविल्या शिरा। ऐसे जीव घेऊनि धनुर्धरा। कोरडे केले ॥ २२९ ॥
आणि जंगमाही हात। लाऊनि काढिलें पित्त। मग राखिले शिणत। आणिक जीव ॥ २३० ॥
अहो वसतीं धवळारें। मोडूनि केलीं देव्हारें। नागवूनि वेव्हारें। गवांदी घातली ॥ २३१ ॥
मस्तक पांघुरविलें। तंव तळवटीं उघडें पडलें। घर मोडोनि केले। मांडव पुढें ॥ २३२ ॥
नाना पांघुरणें। जाळूनि जैसें तापणें। जालें आंगधुणें। कुंजराचें ॥ २३३ ॥
नातरी बैल विकूनि गोठा। पुंसा लावोनि बांधिजे गांठा। इया करणी कीं चेष्टा ?। काइ हसों ॥ २३४ ॥
एकीं धर्माचिया वाहणी। गाळूं आदरिलें पाणी। तंव गाळितया आहाळणीं। जीव मेले ॥ २३५ ॥
एक न पचवितीचि कण। इये हिंसेचे भेण। तेथ कदर्थले प्राण। तेचि हिंसा ॥ २३६ ॥
एवं हिंसाचि अहिंसा। कर्मकांडीं हा ऐसा। सिद्धांतु सुमनसा। वोळखें तूं ॥ २३७ ॥
पहिलें अहिंसेचें नांव। आम्हीं केलें जंव। तंव स्फूर्ति बांधली हांव। इये मती ॥ २३८ ॥
तरि कैसेनि इयेतें गाळावें। म्हणौनि पडिलें बोलावें। तेवींचि तुवांही जाणावें। ऐसा भावो ॥ २३९ ॥
बहुतकरूनि किरीटी। हाचि विषो इये गोठी। एऱ्हवी कां आडवाटीं। धाविजैल गा ? ॥ २४० ॥
आणि स्वमताचिया निर्धारा-। लागोनियां धनुर्धरा। प्राप्तां मतांतरां। निर्वेचु कीजे ॥ २४१ ॥
ऐसी हे अवधारीं। निरूपिती परी। आतां ययावरी। मुख्य जें गा ॥ २४२ ॥
तें स्वमत बोलिजैल। अहिंसे रूप किजैल। जेणें उठलिया आंतुल। ज्ञान दिसे ॥ २४३ ॥
परी तें अधिष्ठिलेनि आंगें। जाणिजे आचरतेनि बगें। जैसी कसवटी सांगे। वानियातें ॥ २४४ ॥
तैसें ज्ञानामनाचिये भेटी। सरिसेंचि अहिंसेचें बिंब उठी। तेंचि ऐसें किरीटी। परिस आतां ॥ २४४ ॥
तरी तरंगु नोलांडितु। लहरी पायें न फोडितु। सांचलु न मोडितु। पाणियाचा ॥ २४६ ॥
वेगें आणि लेसा। दिठी घालूनि आंविसा। जळीं बकु जैसा। पाउल सुये ॥ २४७ ॥
कां कमळावरी भ्रमर। पाय ठेविती हळुवार। कुचुंबैल केसर। इया शंका ॥ २४८ ॥
तैसे परमाणु पां गुंतले। जाणूनि जीव सानुले। कारुण्यामाजीं पाउलें। लपवूनि चाले ॥ २४९ ॥
ते वाट कृपेची करितु। ते दिशाचि स्नेह भरितु। जीवातळीं आंथरितु। आपुला जीवु ॥ २५० ॥

ऐसिया जतना। चालणें जया अर्जुना। हें अनिर्वाच्य परिमाणा। पुरिजेना ॥ २५१॥
पैं मोहाचेनि सांगडें। लासी पिलीं धरी तोंडें। तेथ दांतांचे आगरडे। लागती जैसे ॥ २५२॥
कां स्नेहाळु माये। तान्हयाची वास पाहे। तिये दिठी आहे। हळुवार जें ॥ २५३॥
नाना कमळदळें। डोलविजती ढाळें। तो जेणें पाडें बुबुळें। वारा घेपे ॥ २५४॥
तैसेनि मार्दवें पाय। भूमीवरी न्यसीतु जाय। लागती तेथ होय। जीवां सुख ॥ २५५॥
ऐसिया लघिमा चालतां। कृमि कीटक पंडुसुता। देखे तरी माघौता। हळूचि निघे ॥ २५६॥
म्हणे पावो धडफडील। तरी स्वामीची निद्रा मोडैल। रचलेपणा पडैल। झोती हन ॥ २५७॥
इया काकुळती। वाहणी घे माघौती। कोणेही व्यक्ती। न वचे वरी ॥ २५८॥
जीवाचेनि नांवें। तृणातेंही नोलांडवे। मग न लेखितां जावें। हे कें गोठी ?॥ २५९॥
मुंगिये मेरु नोलांडवे। मशका सिंधु न तरवे। तैसा भेटलियां न करवे। अतिक्रमु ॥ २६०॥
ऐसी जयाची चाली। कृपाफळी फळा आली। देखसी जियाली। दया वाचे ॥ २६१॥
स्वयें श्वसणेंचि सुकुमार। मुख मोहाचें माहेर। माधुर्या जाहले अंकुर। दशन तैसे ॥ २६२॥
पुढां स्नेह पाझरे। माघां चालती अक्षरें। शब्द पाठीं अवतरे। कृपा आधीं ॥ २६३॥
तंव बोलणेंचि नाहीं। बोलों म्हणे जरी कांहीं। तरी बोल कोणाही। खुपेल कां ॥ २६४॥
बोलतां अधिकुही निघे। तरी कोण्हाही वर्मीं न लगे। आणि कोण्हासि न रिघे। शंका मनीं ॥ २६५॥
मांडिली गोठी हन मोडैल। वासिपैल कोणी उडैल। आइकोनिचि वोवांडिल। कोण्ही जरी ॥ २६६॥
तरी दुवाळी कोणा नोहावी। भुंवई कवणाची नुचलावी। ऐसा भावो जीवीं। म्हणौनि उगा ॥ २६७॥
मग प्रार्थिला विपायें। जरी लोभें बोलों जाये। तरी परिसतया होये। मायबापु ॥ २६८॥
कां नादब्रह्मचि मुसे आलें। कीं गंगापय असललें। पतिव्रते आलें। वार्धक्य जैसे ॥ २६९॥
तैसें साच आणि मवाळ। मितले आणि रसाळ। शब्द जैसे कल्लोळ। अमृताचे ॥ २७०॥
विरोधुवादुबळु। प्राणितापढाळु। उपहासु छळु। वर्मस्पर्शु ॥ २७१॥
आटु वेगु विंदाणु। आशा शंका प्रतारणु। हे संन्यासिले अवगुणु। जया वाचा ॥ २७२॥
आणि तयाचि परी किरीटी। थाउ जयाचिये दिठी। सांडिलिया भ्रुकुटी। मोकळिया ॥ २७३॥
कां जे भूतीं वस्तु आहे। तियें रुपों शके विपायें। म्हणौनि वासु न पाहे। बहुतकरूनी ॥ २७४॥
ऐसाही कोणे एके वेळे। भीतरले कृपेचेनि बळें। उघडोनियां डोळे। दृष्टी घाली ॥ २७५॥
तरी चंद्रबिंबौनि धारा। निघतां नव्हती गोचरा। परि एकसरें चकोरां। निघती दोंदें ॥ २७६॥
तैसें प्राणियांसि होये। जरी तो कहींवासु पाहे। तया अवलोकनाची सोये। कूर्मींही नेणे ॥ २७७॥
किंबहुना ऐसी। दिठी जयाची भूतांसी। करही देखसी। तैसेचि ते ॥ २७८॥
तरी होऊनियां कृतार्थ। राहिले सिद्धांचे मनोरथ। तैसे जयाचे हात। निर्व्यापार ॥ २७९॥
अक्षमें आणि संन्यासिलें। कीं निरिंधन आणि विझालें। मुकेनि घेतलें। मौन जैसें ॥ २८०॥
तयापरी कांहीं। जयां करां करणें नाहीं। जे अकर्तयाच्या ठायीं। बैसों येती ॥ २८१॥
आसुडैल वारा। नख लागेल अंबरा। इया बुद्धी करां। चळों नेदी ॥ २८२॥
तेथ आंगावरिलीं उडवावीं। कां डोळां रिगतें झाडावीं। पशुपक्ष्यां दावावीं। त्रासमुद्रा ॥ २८३॥
इया केउतिया गोठी। नावडे दंडु काठी। मग शस्त्राचें किरीटी। बोलणें कें ? ॥ २८४॥
लीलाकमळें खेळणें। कांपुष्पमाळा झेलणें। न करी म्हणे गोफणें। ऐसें होईल ॥ २८५॥
हालवतील रोमावळी। यालागीं आंग न कुरवाळी। नखांची गुंडाळी। बोटांवरी ॥ २८६॥

तंव करणेयाचाचि अभावो। परी ऐसाही पडे प्रस्तावो। तरी हातां हाचि सरावो। जे जोडिजती ॥ २८७॥
कां नाभिकारा उचलिजे। हातु पडिलियां देइजे। नातरी आर्तातें स्पर्शिजे। अळुमाळु ॥ २८८॥
हेंही उपरोधें करणें। तरी आर्तभय हरणें। नेणती चंद्रकिरणें। जिव्हाळा तो ॥ २८९॥
पावोनि तो स्पर्शु। मलयानिळु खरपुसु। तेणें मानें पशु। कुरवाळणें ॥ २९०॥
जे सदा रिते मोकळे। जैशी चंदनांगें निसळें। न फळतांही निर्फळें। होतीचिना ॥ २९१॥
आतां असो हें वाग्जाळ। जाणें तें करतळ। सज्जनांचे शीळ। स्वभाव जैसे ॥ २९२॥
आतां मन तयाचें। सांगों म्हणों जरी साचें। तरी सांगितले कोणाचे। विलास हे ? ॥ २९३॥
काइ शाखा नव्हे तरु ?। जळेंवीण असे सागरु ?। तेज आणि तेजाकारु। आन काई ? ॥ २९४॥
अवयव आणि शरीर। हे वेगळाले कीर ?। कीं रसु आणि नीर। सिनानीं आथी ? ॥ २९५॥
म्हणौनि हे जे सर्व। सांगितले बाह्य भाव। ते मनचि गा सावयव। ऐसें जाणें ॥ २९६॥
जें बीज भुई खोंविलें। तेंचि वरी रुख जाहलें। तैसें इंद्रियाद्वारीं फांकलें। अंतरचि कीं ॥ २९७॥
पैं मानसींचि जरी। अहिंसेची अवसरी। तरी कैंची बाहेरी। वोसंडेल ? ॥ २९८॥
आवडे ते वृत्ती किरीटी। आधीं मनौनीचि उठी। मग ते वाचे दिठी। करांसि ये ॥ २९९॥
वांचूनि मनींचि नाहीं। तें वाचेसि उमटेल काई ?। बींवीण भुई। अंकुर असे ? ॥ ३००॥
म्हणौनि मनपण जैं मोडे। तैं इंद्रिय आधींचि उबडें। सूत्रधारेंवीण साइखडें। वावो जैसें ॥ ३०१॥
उगमींचि वाळूनि जाये। तें वोघीं कैचें वाहे। जीवु गेलिया आहे। चेष्टा देहीं ? ॥ ३०२॥
तैसें मन हें पांडवा। मूळ या इंद्रियभावा। हेंचि राहटे आघवां। द्वारीं इहीं ॥ ३०३॥
परी जिये वेळीं जैसें। जें होऊनि आंतु असे। बाहेरी ये तैसें। व्यापाररूपें ॥ ३०४॥
यालागी साचोकारें। मनीं अहिंसा थांवे थोरें। पिकली द्रुती आदरें। बोभात निघे ॥ ३०५॥
म्हणौनि इंद्रियें तेचि संपदा। वेचितां हीं उदावादा। अहिंसेचा धंदा। करितें आहाती ॥ ३०६॥
समुद्रीं दाटे भरितें। तैं समुद्रचि भरी तरियांते। तैसें स्वसंपत्ती चित्तें। इंद्रियां केलें ॥ ३०७॥
हें बहु असो पंडितु। धरुनि बाळकाचा हातु। वोळी लिही व्यक्तु। आपणचि ॥ ३०८॥
तैसें दयाळुत्व आपुलें। मनें हातापायां आणिलें। मग तेथ उपजविलें। अहिंसेतें ॥ ३०९॥
याकारणें किरीटी। इंद्रियांचिया गोठी। मनाचिये राहाटी। रूप केलें ॥ ३१०॥
ऐसा मनें देहें वाचा। सर्व संन्यासु दंडाचा। जाहला ठायीं जयाचा। देखशील ॥ ३११॥
तो जाण वेल्हाळ। ज्ञानाचें वेळाउळ। हें असो निखळ। ज्ञानचि तो ॥ ३१२॥
जे अहिंसा कानें ऐकिजे। ग्रंथाधारें निरूपिजे। ते पाहावी हें उपजे। तैं तोचि पाहावा ॥ ३१३॥
ऐसें म्हणितलें देवें। तें बोलें एकें सांगावें। परी फांकला हें उपसाहावें। तुम्हीं मज ॥ ३१४॥
म्हणाल हिरवें चारीं गुरूं। विसरे मागील मोहर धरूं। कां वारेलगें पांखिरूं। गगनीं भरे ॥ ३१५॥
तैसिया प्रेमाचिया स्फूर्ती। फावलिया रसवृत्तीं। वाहविला मती। आकळेना ॥ ३१६॥
तरि तैसें नोहे अवधारा। कारण असें विस्तारा। एऱ्हवीं पद तरी अक्षरां। तिहींचेंचि ॥ ३१७॥
अहिंसा म्हणतां थोडी। परी ते तैंचि होय उघडी। जैं लोटिजती कोडी। मतांचिया ॥ ३१८॥
एऱ्हवीं प्राप्तें मतांतरें। थातंबूनि आंगभरें। बोलिजैल ते न सरे। तुम्हांपाशीं ॥ ३१९॥
रत्नपारखियांच्या गांवीं। जाईल गंडकी तरी सोडावी। काश्मीरीं न करावी। मिडगण जेवीं ॥ ३२०॥
काइसा वासु कापुरा। मंद जेथ अवधारा। पिठाचा विकरा। तिये सातें ? ॥ ३२१॥
म्हणौनि इये सभे। बोलकेपणाचेनि क्षोभें। लाग सरूं न लभे। बोला प्रभु ॥ ३२२॥

सामान्या आणि विशेषा। सकळै कीजेल देखा। तरी कानाचेया मुखा-। कडे न्याल ना तुम्ही ॥ ३२३॥
शंकेचेनि गदळें। जैं शुद्ध प्रमेय मैळे। तैं मागुतिया पाउलीं पळे। अवधान येतें ॥ ३२४॥
कां करूनि बाबुळियेची बुंथी। जळें जियें ठाती। तयांची वास पाहाती। हंसु काई ? ॥ ३२५॥
कां अभ्रापैलीकडे। जैं येत चांदिणें कोडें। तैं चकोरें चांचुवडें। उचलितीना ॥ ३२६॥
तैसें तुम्ही वास न पाहाल। ग्रंथु नेघा वरी कोपाल। जरी निर्विवाद नव्हैल। निरूपण ॥ ३२७॥
न बुझावितां मतें। न फिटे आक्षेपाचें लागतें। तें व्याख्यान जी तुमतें। जोडूनि नेदी ॥ ३२८॥
आणि माझें तंव आघवें। ग्रथन येणेंचि भावें। जे तुम्हीं संतीं होआवें। सन्मुख सदां ॥ ३२९॥
एऱ्हवीं तरी साचोकारें। तुम्ही गीतार्थाचे सोइरे। जाणोनि गीता एकसरें। धरिली मियां ॥ ३३०॥
जें आपुलें सर्वस्व द्याल। मग इयेतें सोडवूनि न्याल। म्हणौनि ग्रंथु नव्हे बोल। साचचि हे ॥ ३३१॥
कां सर्स्वाचा लोभु धरा। वोलीचा अव्हेरु करा। तरी गीते मज अवधारा। एकचि गती ॥ ३३२॥
किंबहुना मज। तुमचिया कृपा काज। तियेलागीं व्याज। ग्रंथाचें केलें ॥ ३३३॥
तरी तुम्हां रसिकांजोगें। व्याख्यान शोधावें लागे। म्हणौनि जी मतांगें। बोलों गेलों ॥ ३३४॥
तंव कथेसि पसरु जाहला। श्लोकार्थु दूरी गेला। कीजो क्षमा यया बोला। अपत्या मज ॥ ३३५॥
आणि घांसाआंतिल हरळु। फेडितां लागे वेळु। ते दूषण नव्हें खडळु। सांडावा कीं ॥ ३३६॥
कां संवचोरा चुकवितां। दिवस लागलिया माता। कोपावें कीं जीविता। जिताणें कीजे ? ॥ ३३७॥
परी यावरील हें नव्हे। तुम्हीं उपसाहिलें तेंचि बरवें। आतां अवधारिजो देवें। बोलिलें ऐसें ॥ ३३८॥
म्हणे उन्मेखसुलोचना। सावध होई अर्जुना। करूं तुज ज्ञाना। वोळखी आतां ॥ ३३९॥
तरी ज्ञान गा तें एथें। वोळख तूं निरुतें। आक्रोशेंवीण जेथें। क्षमा असे ॥ ३४०॥
अगाध सरोवरीं। कमळिणी जियापरी। कां सदैवाचिया घरीं। संपत्ति जैसी ॥ ३४१॥
पार्था तेणें पाडें। क्षमा जयातें वाढे। तेही लक्षे तें फुडें। लक्षण सांगों ॥ ३४२॥
तरी पढियंते लेणें। आंगीं भावें जेणें। धरिजे तेवीं साहणें। सर्वचि जया ॥ ३४३॥
त्रिविध मुख्य आघवे। उपद्रवांचे मेळावे। वरी पडिलिया नव्हे। वांकुडा जो ॥ ३४४॥
अपेक्षित पावे। तें जेणें तोषें मानवें। अनपेक्षिताही करवे। तोचि मानु ॥ ३४५॥
जो मानापमानातें साहे। सुखदुःख जेथ सामाये। निंदास्तुती नोहे। दुखंडु जो ॥ ३४६॥
उन्हाळेनि जो न तपे। हिमवंती न कांपे। कयसेनिही न वासिपे। पातलेया ॥ ३४७॥
स्वशिखरांचा भारु। नेणें जैसा मेरु। कीं धरा यज्ञसूकरु। वोझें न म्हणे ॥ ३४८॥
नाना चराचरीं भूतीं। दाटणी नव्हे क्षिती। तैसा नाना द्वंद्वीं प्राप्तीं। घामेजेना ॥ ३४९॥
घेऊनी जळाचे लोट। आलिया नदीनदांचे संघाट। करी वाड पोट। समुद्र जेवीं ॥ ३५०॥
तैसें जयाचिया ठायीं। न साहणें काहींचि नाहीं। आणि साहतु असे ऐसेंही। स्मरण नुरे ॥ ३५१॥
आंगा जें पातलें। तें करूनि घाली आपुलें। येथ साहतेनि नवलें। घेपिजेना ॥ ३५२॥
हे अनाक्रोश क्षमा। जयापाशीं प्रियोत्तमा। जाण तेणें महिमा। ज्ञानासि गा ॥ ३५३॥
तो पुरुषु पांडवा। ज्ञानाचा वोलावा। आतां परिस आर्जवा। रूप करूं ॥ ३५४॥
तरी आर्जव तें ऐसें। प्राणाचें सौजन्य जैसें। आवडे तयाही दोषें। एकचि गा ॥ ३५५॥
कां तोंड पाहूनि प्रकाशु। न करी जेवीं चंडांशु। जगा एकचि अवकाशु। आकाश जैसें ॥ ३५६॥
तैसें जयाचें मन। माणुसाप्रति आन आन। नव्हे आणि वर्तन। ऐसें पैं तें ॥ ३५७॥
जे जगेंचि सनोळख। जगेंसीं जुनाट सोयरिक। आपपर हें भाख। जाणणें नाहीं ॥ ३५८॥

भलतेणेंसीं मेळु। पाणिया ऐसा ढाळु। कवणेविखीं आडळु। नेघे चित्त ॥ ३५९॥
वारियाची धांव। तैसे सरळ भाव। शंका आणि हांव। नाहीं जया ॥ ३६०॥
मायेपुढें बाळका। रिगतां न पडे शंका। तैसें मन देतां लोकां। नालोची जो ॥ ३६१॥
फांकलिया इंदीवरा। परिवारु नाहीं धनुर्धरा। तैसा कोनकोंपरा। नेणेचि जो ॥ ३६२॥
चोखाळपण रत्नाचें। रत्नावरी किरणाचें। तैसें पुढां मन जयाचें। करणें पाठीं ॥ ३६३॥
आलोचूं जो नेणे। अनुभवचि जोगावणें। धरी मोकळी अंतःकरणें। नव्हेचि जया ॥ ३६४॥
दिठी नोहे मिणधी। बोलणें नाहीं संदिग्धी। कवणेंसीं हीनबुद्धी। राहाटीजे ना ॥ ३६५॥
दाही इंद्रियें प्रांजळें। निष्प्रपंचें निर्मळें। पांचही पालव मोकळे। आठही पाहर ॥ ३६६॥
अमृताची धार। तैसें उजूं अंतर। किंबहुना जो माहेर। या चिन्हांचें ॥ ३६७॥
तो पुरुष सुभटा। आर्जवाचा आंगवटा। जाण तेथेंचि घरटा। ज्ञानें केला ॥ ३६८॥
आतां ययावरी। गुरुभक्तीची परी। सांगों गा अवधारीं। चतुरनाथा ॥ ३६९॥
आघवियाचि दैवां। जन्मभूमि हे सेवा। जे ब्रह्म करी जीवा। शोच्यातेंहि ॥ ३७०॥
हें आचार्योपास्ती। प्रकटिजैल तुजप्रती। बैसों दे एकपांती। अवधानाची ॥ ३७१॥
तरी सकळ जळसमृद्धी। घेऊनि गंगा निघाली उदधी। कीं श्रुति हे महापदीं। पैठी जाहाली ॥ ३७२॥
नाना वेंटाळूनि जीवितें। गुणागुण उखितें। प्राणनाथा उचितें। दिधलें प्रिया ॥ ३७३॥
तैसें सबाह्य आपुलें। जेणें गुरुकुळीं वोपिलें। आपणपें केलें। भक्तीचें घर ॥ ३७४॥
गुरुगृह जये देशीं। तो देशुचि वसे मानसीं। विरहिणी कां जैसी। वल्लभातें ॥ ३७५॥
तियेकडोनि येतसे वारा। देखोनि धांवे सामोरा। आड पडे म्हणे घरा। बीजें कीजो ॥ ३७६॥
साचा प्रेमाचिया भुली। तया दिशेसीचि आवडे बोली। जीवु थानपती करूनि घाली। गुरुगृहीं जो ॥ ३७७॥
परी गुरुआज्ञा धरिलें। देह गांवीं असे एकलें। वांसरुवा लाविलें। दावें जैसें ॥ ३७८॥
म्हणे कैं हें बिरडें फिटेल। कैं तो स्वामी भेटेल। युगाहूनि वडील। निमिष मानी ॥ ३७९॥
ऐसेया गुरुग्रामींचें आलें। कां स्वयें गुरूंनींचि धाडिलें। तरी गतायुष्या जोडलें। आयुष्य जैसें ॥ ३८०॥
कां सुकतया अंकुरा-। वरी पडलिया पीयूषधारा। नाना अल्पोदकींचा सागरा। आला मासा ॥ ३८१॥
नातरी रंकें निधान देखिलें। कां आंधळिया डोळे उघडले। भणंगाचिया आंगा आलें। इंद्रपद ॥ ३८२॥
तैसें गुरुकुळाचेनि नांवें। महासुखें अति थोरावे। जें कोडेंही पोटाळवें। आकाश कां ॥ ३८३॥
पैं गुरुकुळीं ऐसी। आवडी जया देखसी। जाण ज्ञान तयापासीं। पाइकी करी ॥ ३८४॥
आणि अभ्यंतरीलियेकडे। प्रेमाचेनि पवाडे। श्रीगुरूंचें रूपडें। उपासी ध्यानीं ॥ ३८५॥
हृदयशुद्धीचिया आवारीं। आराध्यु तो निश्चल ध्रुव करी। मग सर्व भावेंसी परिवारीं। आपण होय ॥ ३८६॥
कां चैतन्यांचिये पोवळी-। माजीं आनंदाचिया राउळीं। श्रीगुरुलिंगा ढाळी। ध्यानामृत ॥ ३८७॥
उदयिजतां बोधार्का। बुद्धीची डाळ सात्त्विका। भरोनियां त्र्यंबका। लाखोली वाहे ॥ ३८८॥
काळशुद्धी त्रिकाळीं। जीवदशा धूप जाळीं। न्यानदीपें वोंवाळी। निरंतर ॥ ३८९॥
सामरस्याची रससोय। अखंड अर्पितु जाय। आपण भराडा होय। गुरु तो लिंग ॥ ३९०॥
नातरी जीवाचिये सेजे। गुरु कांतु करूनि भुंजे। ऐसीं प्रेमाचेनि भोजें। बुद्धी वाहे ॥ ३९१॥
कोणेएके अवसरीं। अनुरागु भरे अंतरीं। कीं तया नाम करी। क्षीराब्धी ॥ ३९२॥
तेथ ध्येयध्यान बहु सुख। तेंचि शेषतुका निर्दोख। वरी जलशयन देख। भावी गुरु ॥ ३९३॥
मग वोळगती पाय। ते लक्ष्मी आपण होय। गरुड होऊनि उभा राहे। आपणचि ॥ ३९४॥

नाभीं आपणचि जन्मे। ऐसें गुरुमूर्तिप्रेमें। अनुभवी मनोधर्मैं। ध्यानसुख ॥ ३९५ ॥
एकाधिये वेळें। गुरु माय करी भावबळें। मग स्तन्यसुखें लोळे। अंकावरी ॥ ३९६ ॥
नातरी गा किरीटी। चैतन्यतरुतळवटीं। गुरु धेनु आपण पाठीं। वत्स होय ॥ ३९७ ॥
गुरुकृपास्नेहसलिलीं। आपण होय मासोळी। कोणे एके वेळीं। हेंचि भावीं ॥ ३९८ ॥
गुरुकृपामृताचे वडप। आपण सेवावृत्तीचें होय रोप। ऐसेसे संकल्प। विये मन ॥ ३९९ ॥
चक्षुपक्षेवीण। पिलूं होय आपण। कैसें पैं अपारपण। आवडीचें ॥ ४०० ॥
गुरूतें पक्षिणी करी। चारा घे चांचूवरी। गुरु तारू धरी। आपण कांस ॥ ४०१ ॥
ऐसें प्रेमाचेनि थावें। ध्यानचि ध्यानातें प्रसवे। पूर्णसिंधु हेलावे। फुटती जैसे ॥ ४०२ ॥
किंबहुना यापरी। श्रीगुरुमूर्ती अंतरीं। भोगी आतां अवधारीं। बाह्यसेवा ॥ ४०३ ॥
तरी जिवीं ऐसे आवांके। म्हणे दास्य करीन निकें। जैसें गुरु कौतुकें। माग म्हणती ॥ ४०४ ॥
तैसिया साचा उपास्ती। गोसावी प्रसन्न होती। तेथ मी विनंती। ऐसी करीन ॥ ४०५ ॥
म्हणेन तुमचा देवा। परिवारु जो आघवा। तेतुलें रूपें होआवा। मीचि एकु ॥ ४०६ ॥
आणि उपकरतीं आपुलीं। उपकरणें आथि जेतुलीं। माझीं रूपें तेतुलीं। होआवीं स्वामी ॥ ४०७ ॥
ऐसा मागेन वरु। तेथ हो म्हणती श्रीगुरु। मग तो परिवारु। मीचि होईन ॥ ४०८ ॥
उपकरणजात सकळिक। तें मीचि होईन एकैक। तेव्हां उपास्तीचें कवतिक। देखिजैल ॥ ४०९ ॥
गुरु बहुतांची माये। परी एकलौती होऊनि ठाये। तैसें करूनि आण वायें। कृपे तिये ॥ ४१० ॥
तया अनुरागा वेधु लावीं। एकपत्नीव्रत घेववीं। क्षेत्रसंन्यासु करवीं। लोभाकरवीं ॥ ४११ ॥
चतुर्दिक्षु वारा। न लाहे निघों बाहिरा। तैसा गुरुकृपें पांजिरा। मीचि होईन ॥ ४१२ ॥
आपुलिया गुणांचीं लेणीं। करीन गुरुसेवे स्वामिणी। हें असो होईन गंवसणी। मीचि भक्तीसी ॥ ४१३ ॥
गुरुस्नेहाचिये वृष्टी। मी पृथ्वी होईन तळवटीं। ऐसिया मनोरथांचिया सृष्टी। अनंता रची ॥ ४१४ ॥
म्हणे श्रीगुरूंचें भुवन। आपण मी होईन। आणि दास होऊनि करीन। दास्य तेथिंचें ॥ ४१५ ॥
निर्गमागमीं दातारें। जे वोलांडिजती उंबरे। ते मी होईन आणि द्वारें। द्वारपाळु ॥ ४१६ ॥
पाउवा मी होईन। तियां मीचि लेववीन। छत्र मी आणि करीन। बारीपण ॥ ४१७ ॥
मी तळ उपरु जाणविता। चंवरु धरु हातु देता। स्वामीपुढें खोलता। होईन मी ॥ ४१८ ॥
मीचि होईन सागळा। करूं सुईन गुरुळां। सांडिती तो नेपाळा। पडिघा मीचि ॥ ४१९ ॥
हडप मी वोळगेन। मीचि उगाळु घेईन। उळिग मी करीन। आंघोळीचें ॥ ४२० ॥
होईन गुरूंचें आसन। अलंकार परिधान। चंदनादि होईन। उपचार ते ॥ ४२१ ॥
मीचि होईन सुआरु। वोगरीन उपहारु। आपणपें श्रीगुरु। वोंवाळीन ॥ ४२२ ॥
जे वेळीं देवो आरोगिती। तेव्हां पांतीकरु मीचि पांतीं। मीचि होईन पुढती। देईन विडा ॥ ४२३ ॥
ताट मी काढीन। सेज मी झाडीन। चरणसंवाहन। मीचि करीन ॥ ४२४ ॥
सिंहासन होईन आपण। वरी श्रीगुरु करिती आरोहण। होईन पुरेपण। वोळगेचें ॥ ४२५ ॥
श्रीगुरूंचें मन। जया देईल अवधान। तें मी पुढां होईन। चमत्कारु ॥ ४२६ ॥
तया श्रवणाचे आंगणीं। होईन शब्दांचिया आक्षौहिणी। स्पर्श होईन घसणी। आंगाचिया ॥ ४२७ ॥
श्रीगुरूंचे डोळे। अवलोकनें स्नेहाळें। पाहाती तियें सकळें। होईन रूपें ॥ ४२८ ॥
तिये रसने जो जो रुचेल। तो तो रसु म्यां होईजैल। गंधरूपें कीजेल। घ्राणसेवा ॥ ४२९ ॥
एवं बाह्यमनोगत। श्रीगुरुसेवा समस्त। वेंटाळीन वस्तुजात। होऊनियां ॥ ४३० ॥

जंव देह हें असेल। तंव वोळगी ऐसी कीजेल। मग देहांतीं नवल। बुद्धि आहे ॥ ४३१॥
इये शरीरींची माती। मेळवीन तिये क्षिती। जेथ श्रीचरण उभे ठाती। श्रीगुरूंचे ॥ ४३२॥
माझा स्वामी कवतिकें। स्पर्शीजति जियें उदकें। तेथ लया नेईन निकें। आपीं आप ॥ ४३३॥
श्रीगुरु वोंवाळिजती। कां भुवनीं जे उजळिजती। तयां दीपांचिया दीप्तीं। ठेवीन तेज ॥ ४३४॥
चवरी हन विंजणा। तेथ लयो करीन प्राणा। मग आंगाचा वोळंगणा। होईन मी ॥ ४३५॥
जिये जिये अवकाशीं। श्रीगुरु असती परिवारेंसीं। आकाश लया आकाशीं। नेईन तिये ॥ ४३६॥
परी जीतु मेला न संडीं। निमेषु लोकां न धाडीं। ऐसेनि गणावया कोडी। कल्पांचिया ॥ ४३७॥
येतुलेंवरी धिंवसा। जयाचिया मानसा। आणि करूनियांहि तैसा। अपारु जो ॥ ४३८॥
रात्र दिवस नेणे। थोडें बहु न म्हणें। म्हणियाचेनि दाटपणें। साजा होय ॥ ४३९॥
तो व्यापारु येणें नांवें। गगनाहूनि थोरावे। एकला करी आघवें। एकेचि काळीं ॥ ४४०॥
हृदयवृत्ती पुढां। आंगचि घे दवडा। काज करी होडा। मानसेंशीं ॥ ४४१॥
एकादियां वेळा। श्रीगुरुचिया खेळा। लोण करी सकळा। जीविताचें ॥ ४४२॥
जो गुरुदास्यें कृशु। जो गुरुप्रेमें सपोषु। गुरुआज्ञे निवासु। आपणचि जो ॥ ४४३॥
जो गुरु कुळें सुकुलीनु। जो गुरुबंधुसौजन्यें सुजनु। जो गुरुसेवाव्यसनें सव्यसनु। निरंतर ॥ ४४४॥
गुरुसंप्रदायधर्म। तेचि जयाचे वर्णाश्रम। गुरुपरिचर्या नित्यकर्म। जयाचें गा ॥ ४४५॥
गुरु क्षेत्र गुरु देवता। गुरु माय गुरु पिता। जो गुरुसेवेपरौता। मार्ग नेणें ॥ ४४६॥
श्रीगुरूचे द्वार। तें जयाचें सर्वस्व सार। गुरुसेवकां सहोदर। प्रेमें भजे ॥ ४४७॥
जयाचें वक्त्र। वाहे गुरुनामाचे मंत्र। गुरुवाक्यावांचूनि शास्त्र। हातीं न शिवे ॥ ४४८॥
शिवतलें गुरुचरणीं। भलतैसें हो पाणी। तया सकळ तीर्थें आणी। त्रैलोक्यींचीं ॥ ४४९॥
श्रीगुरूचें उशिटें। लाहे जैं अवचटें। तैं तेणें लाभें विटे। समाधीसी ॥ ४५०॥
कैवल्यसुखासाठीं। परमाणु घे किरीटी। उधळती पायांपाठीं। चालतां जे ॥ ४५१॥
हें असो सांगावें किती। नाहीं पारु गुरुभक्ती। परी गा उत्क्रांतमती। कारण हें ॥ ४५२॥
जया इये भक्तीची चाड। जया इये विषयींचें कोड। जो हे सेवेवांचून गोड। न मनी कांहीं ॥ ४५३॥
तो तत्त्वज्ञाचा ठावो। ज्ञाना तेणेंचि आवो। हें असो तो देवो। ज्ञान भक्तु ॥ ४५४॥
हें जाण पां साचोकारें। तेथ ज्ञान उघडेनि द्वारें। नांदत असे जगा पुरे। इया रीती ॥ ४५५॥
जिये गुरुसेवेविखीं। माझा जीव अभिलाखी। म्हणौनि सोयचुकी। बोली केली ॥ ४५६॥
एऱ्हवीं असतां हातीं खुळा। भजनावधानीं आंधळा। परिचर्येलागीं पांगुळा-। पासूनि मंदु ॥ ४५७॥
गुरुवर्णनीं मुका। आळशी पोशिजे फुका। परी मनीं आथि निका। सानुरागु ॥ ४५८॥
तेणेंचि पैं कारणें। हें स्थूळ पोसणें। पडलें मज म्हणे। ज्ञानदेवो ॥ ४५९॥
परि तो बोलु उपसाहावा। आणि वोळगे अवसरु देयावा। आतां म्हणेन जी बरवा। ग्रंथार्थुचि ॥ ४६०॥
परिसा परिसा श्रीकृष्णु। जो भूतभारसहिष्णु। तो बोलतसे विष्णु। पार्थु ऐके ॥ ४६१॥
म्हणे शुचित्व गा ऐसें। जयापाशीं दिसे। आंग मन जैसें। कापुराचें ॥ ४६२॥
कां रत्नाचें दळवाडें। तैसें सबाह्य चोखडें। आंत बाहेरि एकें पाडें। सूर्यु जैसा ॥ ४६३॥
बाहेरीं कर्मैं क्षाळला। भितरीं ज्ञानें उजळला। इहीं दोहीं परीं आला। पाखाळा एका ॥ ४६४॥
मृत्तिका आणि जळें। बाह्य येणें मेळें। निर्मळु होय बोलें। वेदाचेनी ॥ ४६५॥
भलतेथ बुद्धीबळी। रजआरिसा उजळी। सौंदणी फेडी थिगळी। वस्त्रांचिया ॥ ४६६॥

किंबहुना इयापरी। बाह्य चोख अवधारीं। आणि ज्ञानदीपु अंतरीं। म्हणौनि शुद्ध ॥ ४६७॥
एऱ्हवीं तरी पंडुसुता। आंत शुद्ध नसतां। बाहेरि कर्म तो तत्त्वतां। विटंबु गा ॥ ४६८॥
मृत जैसा शृंगारिला। गाढव तीर्थीं न्हाणिला। कडुदुधिया माखिला। गुळें जैसा ॥ ४६९॥
वोस गृहीं तोरण बांधिलें। कां उपवासी अन्नें लिंपिलें। कुंकुमसेंदुर केलें। कांतहीनेनें ॥ ४७०॥
कळस ढिमाचे पोकळ। जळो वरील तें झळाळ। काय करूं चित्रींव फळ। आंतु शेण ॥ ४७१॥
तैसें कर्मवरिचिलेंकडां। न सरे थोर मोलें कुडा। नव्हे मदिरेचा घडा। पवित्र गंगे ॥ ४७२॥
म्हणौनि अंतरीं ज्ञान व्हावें। मग बाह्य लाभेल स्वभावें। वरी ज्ञान कर्में संभवे। ऐसें कें जोडे ? ॥ ४७३॥
यालागी बाह्य विभागु। कर्में धुतला चांगु। आणि ज्ञानें फिटला वंगु। अंतरींचा ॥ ४७४॥
तेथ अंतर बाह्य गेले। निर्मळत्व एक जाहलें। किंबहुना उरलें। शुचित्वचि ॥ ४७५॥
म्हणौनि सद्भाव जीवगत। बाहेरी दिसती फांकत। जे स्फटिकगृहींचे डोलत। दीप जैसे ॥ ४७६॥
विकल्प जेणें उपजे। नाथिली विकृति निपजे। अप्रवृत्तीचीं बीजें। अंकुर घेती ॥ ४७७॥
तें आइके देखे अथवा भेटे। परी मनीं कांहींचि नुमटे। मेघरंगें न कांटे। व्योम जैसें ॥ ४७८॥
एऱ्हवीं इंद्रियांचेनि मेळें। विषयांवरी तरी लोळे। परी विकाराचेनि विटाळें। लिंपिजेना ॥ ४७९॥
भेटलिया वाटेवरी। चोखी आणि माहारी। तेथ नातळें तियापरी। राहाटों जाणें ॥ ४८०॥
कां पतिपुत्रांतें आलिंगी। एकचि ते तरुणांगी। तेथ पुत्रभावाच्या आंगीं। न रिगे कामु ॥ ४८१॥
तैसें हृदय चोख। संकल्पविकल्पीं सनोळख। कृत्याकृत्य विशेख। फुडें जाणें ॥ ४८२॥
पाणियें हिरा न भिजे। आधणीं हरळु न शिजे। तैसी विकल्पजातें न लिंपिजे। मनोवृत्ती ॥ ४८३॥
तया नांव शुचिपण। पार्था गा संपूर्ण। हें देखसी तेथ जाण। ज्ञान असे ॥ ४८४॥
आणि स्थिरता साचें। घर रिगाली जयाचें। तो पुरुष ज्ञानाचें। आयुष्य गा ॥ ४८५॥
देह तरी वरिचिलीकडे। आपुलिया परी हिंडे। परी बैसका न मोडे। मानसींची ॥ ४८६॥
वत्सावरूनि धेनूचें। स्नेह राना न वचे। नव्हती भोग सतियेचे। प्रेमभोग ॥ ४८७॥
कां लोभिया दूर जाये। परी जीव ठेविलाचि ठाये। तैसा देहो चाळितां नव्हे। चळु चित्ता ॥ ४८८॥
जातया अभ्रासवें। जैसें आकाश न धांवे। भ्रमणचक्रीं न भंवे। ध्रुव जैसा ॥ ४८९॥
पांथिकाचिया येरझारा। सवें पंथु न वचे धनुर्धरा। कां नाहीं जेवीं तरुवरा। येणें जाणें ॥ ४९०॥
तैसा चळणवळणात्मकीं। असोनि ये पांचभौतिकीं। भूतोर्मी एकी। चळिजेना ॥ ४९१॥
वाहुटळीचेनि बळें। पृथ्वी जैसी न ढळे। तैसा उपद्रव उमाळें। न लोटे जो ॥ ४९२॥
दैन्यदुःखीं न तपे। भवशोकीं न कंपे। देहमृत्यु न वासिपे। पातलेनी ॥ ४९३॥
आर्ति आशा पडिभरें। वय व्याधी गजरें। उजू असतां पाठिमोरें। नव्हे चित्त ॥ ४९४॥
निंदा निस्तेज दंडी। कामलोभा वरपडी। परी रोमा नव्हे वांकुडी। मानसाची ॥ ४९५॥
आकाश हें वोसरो। पृथ्वी वरि विरो। परि नेणे मोहरों। चित्तवृत्ती ॥ ४९६॥
हाती हाला फुलीं। पासवणा जेवीं न घाली। तैसा न लोटे दुर्वाक्यशेलीं। शेलिला सांता ॥ ४९७॥
क्षीरार्णवाचिया कल्लोळीं। कंपु नाहीं मंदराचळीं। कां आकाश न जळे जाळीं। वणवियाच्या ॥ ४९८॥
तैशा आल्या गेल्या ऊर्मी। नव्हे गजबज मनोधर्मीं। किंबहुना धैर्य क्षमी। कल्पांतींही ॥ ४९९॥
परी स्थैर्य ऐसी भाष। बोलिजे जे सविशेष। ते हे दशा गा देख। देखणया ॥ ५००॥
हें स्थैर्य निधडें। जेथ आंगें जीवें जोडे। तें ज्ञानाचें उघडें। निधान साचें ॥ ५०१॥
आणि इसाळु जैसा घरा। कां दंदिया हतियेरा। न विसंबे भांडारा। बद्धकु जैसा ॥ ५०२॥

कां एकलौतिया बाळका-। वरि पडौनि ठाके अंबिका। मधुविषीं मधुमक्षिका। लोभिणी जैसी ॥ ५०३॥
अर्जुना जो यापरी। अंतःकरण जतन करी। नेदी उभें ठाकों द्वारीं। इंद्रियांच्या ॥ ५०४॥
म्हणे काम बागुल ऐकेल। हे आशा सियारी देखैल। तरि जीवा टेंकैल। म्हणौनि बिहे ॥ ५०५॥
बाहेरी धीट जैसी। दाटुगा पति कळासी। करी टेहणी तैसी। प्रवृत्तीसीं ॥ ५०६॥
सचेतनीं वाणेपणें। देहासकट आटणें। संयमावरीं करणें। बुझूनि घाली ॥ ५०७॥
मनाच्या महाद्वारीं। प्रत्याहाराचिया ठाणांतरीं। जो यम दम शरीरीं। जागवी उभे ॥ ५०८॥
आधारीं नाभीं कंठीं। बंधत्रयाचीं घरटीं। चंद्रसूर्य संपुटीं। सुये चित्त ॥ ५०९॥
समाधीचे शेजेपासीं। बांधोनि घाली ध्यानासी। चित्त चैतन्य समरसीं। आंतु रते ॥ ५१०॥
अगा अंतःकरणनिग्रहो जो। तो हा हें जाणिजो। हा आथी तेथ विजयो। ज्ञानाचा पैं ॥ ५११॥
जयाची आज्ञा आपण। शिरीं वाहे अंतःकरण। मनुष्याकारें जाण। ज्ञानचि तो ॥ ५१२॥

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८॥

आणि विषयांविखीं। वैराग्याची निकी। पुरवणी मानसीं कीं। जिती आथी ॥ ५१३॥
वमिलेया अन्ना। लाळ न घोंटी जेवीं रसना। कांआंग न सूये आलिंगना। प्रेताचिया ॥ ५१४॥
विष खाणें नागवे। जळत घरीं न रिगवे। व्याघ्रविवरा न वचवे। वस्ती जेवीं ॥ ५१५॥
धडाडीत लोहरसीं। उडी न घालवे जैसी। न करवे उशी। अजगराची ॥ ५१६॥
अर्जुना तेणें पाडें। जयासी विषयवार्ता नावडे। नेदी इंद्रियांचेनि तोंडें। कांहींच जावों ॥ ५१७॥
जयाचे मनीं आलस्य। देही अतिकार्श्य। शमदमीं सौरस्य। जयासि गा ॥ ५१८॥
तपोव्रतांचा मेळावा। जयाच्या ठायीं पांडवा। युगांत जया गांवा-। आंतु येतां ॥ ५१९॥
बहु योगाभ्यासीं हांव। विजनाकडे धांव। न साहे जो नांव। संघाताचें ॥ ५२०॥
नाराचांचीं आंथुरणें। पूयपंकीं लोळणें। तैसें लेखी भोगणें। ऐहिकींचें ॥ ५२१॥
आणि स्वर्गातें मानसें। ऐकोनि मानी ऐसें। कुहिलें पिशित जैसें। श्वानाचें कां ॥ ५२२॥
तें हें विषयवैराग्य। जें आत्मलाभाचें सभाग्य। येणें ब्रह्मानंदा योग्य। जीव होती ॥ ५२३॥
ऐसा उभयभोगीं त्रासु। देखसी जेथ बहुवसु। तेथ जाण रहिवासु। ज्ञानाचा तूं ॥ ५२४॥
आणि सचाडाचिये परी। इष्टापूर्तें करी। परी केलेंपण शरीरीं। वसों नेदी ॥ ५२५॥
वर्णाश्रमपोषकें। कर्में नित्यनैमित्तिकें। तयामाजीं कांहीं न ठके। आचरतां ॥ ५२६॥
परि हें मियां केलें। कीं हें माझेनि सिद्धी गेलें। ऐसें नाहीं ठेविलें। वासनेमाजीं ॥ ५२७॥
जैसें अवचितपणें। वायूसि सर्वत्र विचरणें। कां निरभिमान उदैजणें। सूर्याचें जैसें ॥ ५२८॥
कां श्रुति स्वभावता बोले। गंगा काजेंविण चाले। तैसें अवष्टंभहीन भलें। वर्तणें जयाचें ॥ ५२९॥
ऋतुकाळीं तरी फळती। परी फळलों हें नेणती। तयां वृक्षांचिये ऐसी वृत्ती। कर्मीं सदा ॥ ५३०॥
एवं मनीं कर्मीं बोलीं। जेथ अहंकारा उखी जाहली। एकावळीची काढिली। दोरी जैसी ॥ ५३१॥
संबंधेंवीण जैसीं। अभ्रें असती आकाशीं। देहीं कर्में तैसीं। जयासि गा ॥ ५३२॥
मद्यपाआंगींचें वस्त्र। लेपाहातींचें शस्त्र। बैलावरी शास्त्र। बांधलें आहे ॥ ५३३॥
तया पाडें देहीं। जया मी आहे हे सेचि नाहीं। निरहंकारता पाहीं। तया नांव ॥ ५३४॥

हें संपूर्ण जेथें दिसे। तेथेंचि ज्ञान असे। इयेविषीं अनारिसें। बोलों नये ॥ ५३५ ॥
आणि जन्ममृत्युजरादुःखें। व्याधिवार्धक्यकलुषें। तियें आंगा न येतां देखे। दुरूनि जो ॥ ५३६ ॥
साधकु विवसिया। कां उपसर्गु योगिया। पावे उणेयापुरेया। वोथंबा जेवीं ॥ ५३७ ॥
वैर जन्मांतरींचें। सर्पा मनौनि न वचे। तेवीं अतीता जन्माचें। उणें जो वाहे ॥ ५३८ ॥
डोळां हरळ न विरे। घाई कोत न जिरे। तैसें काळींचें न विसरे। जन्मदुःख ॥ ५३९ ॥
म्हणे पूयगर्तें रिगाला। अहा मूत्ररंध्रें निघाला। कटा रे मियां चाटिला। कुचस्वेदु ॥ ५४० ॥
ऐसऐसिया परी। जन्माचा कांटाळा धरी। म्हणे आतां तें मी न करीं। जेणें ऐसें होय ॥ ५४१ ॥
हारी उमचावया। जुंवारी जैसा ये डाया। कीं वैरा बापाचेया। पुत्र जचे ॥ ५४२ ॥
मारिलियाचेनि रागें। पाठीचा जेवीं सूड मागें। तेणें आक्षेपें लागे। जन्मापाठीं ॥ ५४३ ॥
परी जन्मती ते लाज। न सांडी जयाचें निज। संभाविता निस्तेज। न जिरे जेवीं ॥ ५४४ ॥
आणि मृत्यु पुढां आहे। तोचि कल्पांतीं कां पाहे। परी आजीचि होये। सावधु जो ॥ ५४५ ॥
माजीं अथांव म्हणता। थडियेचि पंडुसुता। पोहणारा आइता। कासे जेवीं ॥ ५४६ ॥
कां न पवतां रणाचा ठावो। सांभाळिजे जैसा आवो। वोडण सुइजे घावो। न लागतांचि ॥ ५४७ ॥
पाहेचा पेणा वाटवधा। तंव आजीचि होईजे सावधा। जीवु न वचतां औषधा। धांविजे जेवीं ॥ ५४८ ॥
येऱ्हवीं ऐसें घडे। जो जळतां घरीं सांपडे। तो मग न पवाडे। कुहा खणों ॥ ५४९ ॥
चोंढिये पाथरु गेला। तैसेनि जो बुडाला। तो बोंबेहिसकट निमाला। कोण सांगे ॥ ५५० ॥
म्हणौनि समर्थेंसीं वैर। जया पडिलें हाडखाइर। तो जैसा आठही पाहर। परजून असे ॥ ५५१ ॥
नातरी केळवली नोवरी। का संन्यासी जियापरी। तैसा न मरतां जो करी। मृत्युसूचना ॥ ५५२ ॥
पैं गा जो ययापरी। जन्मेंचि जन्म निवारी। मरणें मृत्यु मारी। आपण उरे ॥ ५५३ ॥
तया घरीं ज्ञानाचें। सांकडें नाहीं साचें। जया जन्ममृत्युचें। निमालें शल्य ॥ ५५४ ॥
आणि तयाचिपरी जरा। न टेंकतां शरीरा। तारुण्याचिया भरा-। माजीं देखे ॥ ५५५ ॥
म्हणे आजिच्या अवसरीं। पुष्टि जे शरीरीं। ते पाहे होईल काचरी। वाळली जैसी ॥ ५५६ ॥
निदैव्याचे व्यवसाय। तैसे ठाकती हातपाय। अमंत्र्या राजाची परी आहे। बळा यया ॥ ५५७ ॥
फुलांचिया भोगा-। लागीं प्रेम टांगा। तें करेयाचा गुडघा। तैसें होईल ॥ ५५८ ॥
वोढाळाच्या खुरीं। आखरुआतें बुरी। ते दशा माझ्या शिरीं। पावेल गा ॥ ५५९ ॥
पद्मदळेंसी इसाळे। भांडताति हे डोळे। ते होती पडवळें। पिकलीं जैसीं ॥ ५६० ॥
भंवईचीं पडळें। वोमथती सिनसाळे। उरु कुहिजैल जळें। आंसुवाचेनि ॥ ५६१ ॥
जैसें बाभुळीचें खोड। गिरबडूनि जाती सरड। तैसें पिचडीं तोंड। सरकटिजैल ॥ ५६२ ॥
रांधवणी चुलीपुढें। पऱ्हे उन्मादती खातवडे। तैसींचि यें नाकाडें। बिडबिडती ॥ ५६३ ॥
तांबुलें वोंठ राऊं। हांसतां दांत दाऊं। सनागर मिरऊं। बोल जेणें ॥ ५६४ ॥
तयाचि पाहे या तोंडा। येईल जळंबटाचा लोंढा। इया उमळती दाढा। दातांसहित ॥ ५६५ ॥
कुळवाडी रिणें दाटली। कां वांकडिया ढोरें बैसलीं। तैसी नुठी कांहीं केली। जीभचि हे ॥ ५६६ ॥
कुसळें कोरडीं। वारेनि जाती बरडीं। तैसा आपदा तोंडीं। दाढियेसी ॥ ५६७ ॥
आषाढींचेनि जळें। जैसीं झिरपती शैलाचीं मौळें। तैसें खांडीहूनि लाळे। पडती पूर ॥ ५६८ ॥
वाचेसि अपवाडु। कानीं अनुघडु। पिंड गरुवा माकडु। होईल हा ॥ ५६९ ॥
तृणाचें बुझवणें। आंदोळे वारेनगुणें। तैसें येईल कांपणें। सर्वांगासी ॥ ५७० ॥

पायां पडती वेंगडी। हात वळती मुरकुंडी। बरवपणा बागडी। नाचविजैल ॥ ५७१॥
मळमूत्रद्वारें। होऊनि ठाती खोंकरें। नवसियें होती इतरें। माझियां निधनीं ॥ ५७२॥
देखोनि थुंकील जगु। मरणाचा पडैल पांगु। सोइरियां उबगु। येईल माझा ॥ ५७३॥
स्त्रियां म्हणती विवसी। बाळें जाती मूर्च्छी। किंबहुना चिळसी। पात्र होईन ॥ ५७४॥
उभळीचा उजगरा। सेजारियां साइलिया घरा। शिणवील म्हणती म्हातारा। बहुतांतें हा ॥ ५७५॥
ऐसी वार्धक्याची सूचणी। आपणिया तरुणपणीं। देखे मग मनीं। विटे जो गा ॥ ५७६॥
म्हणे पाहे हें येईल। आणि आतांचें भोगितां जाईल। मग काय उरेल। हितालागीं ? ॥ ५७७॥
म्हणौनि नाइकणें पावे। तंव आईकोनि घाली आघवें। पंगु न होता जावें। तेथ जाय ॥ ५७८॥
दृष्टी जंव आहे। तंव पाहावें तेतुलें पाहे। मूकत्वा आधीं वाचा वाहे। सुभाषितें ॥ ५७९॥
हात होती खुळे। हें पुढील मोटकें कळे। आणि करूनि घाली सकळें। दानादिकें ॥ ५८०॥
ऐसी दशा येईल पुढें। तैं मन होईल वेडें। तंव चिंतूनि ठेवी चोखडें। आत्मज्ञान ॥ ५८१॥
जैं चोर पाहे झोंबती। तंव आजीचि रुसिजे संपत्ती। का झांकाझांकी वाती। न वचतां कीजे ॥ ५८२॥
तैसें वार्धक्य यावें। मग जें वायां जावें। तें आतांचि आघवें। सवतें करीं ॥ ५८३॥
आतां मोडूनि ठेलीं दुर्गें। कां वळित धरिलें खगें। तेथ उपेक्षूनि जो निघे। तो नागवला कीं ? ॥ ५८४॥
तैसें वृद्धाप्य होये। आलेपण तें वायां जाये। जे तो शतवृद्ध आहे। नेणों कैंचा ॥ ५८५॥
झाडिलींचि कोळें झाडी। तया न फळे जेवीं बोंडीं। जाहला अग्नि तरी राखोंडी। जाळील काई ? ॥ ५८६॥
म्हणौनि वार्धक्याचेनि आठवें। वार्धक्या जो नागवे। तयाच्या ठायीं जाणावें। ज्ञान आहे ॥ ५८७॥
तैसेंचि नाना रोग। पडिघाती ना जंव पुढां आंग। तंव आरोग्याचे उपेग। करूनि घाली ॥ ५८८॥
सापाच्या तोंडी। पडली जे उंडी। ते लाऊनि सांडी। प्रबुद्ध जैसा ॥ ५८९॥
तैसा वियोगें जेणें दुःखे। विपत्ति शोक पोखे। तें स्नेह सांडूनि सुखें। उदासु होय ॥ ५९०॥
आणि जेणें जेणें कडे। दोष सूतील तोंडें। तयां कर्मरंध्रीं गुंडे। नियमाचे दाटी ॥ ५९१॥
ऐसऐसिया आइती। जयाची परी असती। तोचि ज्ञानसंपत्ती-। गोसावी गा ॥ ५९२॥
आतां आणीकही एक। लक्षण अलौकिक। सांगेन आइक। धनंजया ॥ ५९३॥

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९॥

तरि जो या देहावरी। उदासु ऐसिया परी। उखिता जैसा बिढारीं। बैसला आहे ॥ ५९४॥
कां झाडाची साउली। वाटे जातां मीनली। घरावरी तेतुली। आस्था नाहीं ॥ ५९५॥
साउली सरिसीच असे। परी असे हें नेणिजे जैसें। स्त्रियेचें तैसें। लोलुप्य नाहीं ॥ ५९६॥
आणि प्रजा जे जाली। तियें वस्ती कीर आलीं। कां गोरुवें बैसलीं। रुखातळीं ॥ ५९७॥
जो संपत्तीमाजी असतां। ऐसा गमे पंडुसुता। जैसा कां वाटे जातां। साक्षी ठेविला ॥ ५९८॥
किंबहुना पुंसा। पांजरियामाजीं जैसा। वेदाज्ञेसी तैसा। बिहूनि असे ॥ ५९९॥
एऱ्हवीं दारागृहपुत्रीं। नाहीं जया मैत्री। तो जाण पां धात्री। ज्ञानासि गा ॥ ६००॥
महासिंधू जैसे। ग्रीष्मवर्षीं सरिसे। इष्टानिष्ट तैसें। जयाच्या ठायीं ॥ ६०१॥
कां तिन्ही काळ होतां। त्रिधा नव्हे सविता। तैसा सुखदुःखीं चित्ता। भेदु नाहीं ॥ ६०२॥

जेथ नभाचेनि पाडें। समत्वा उणें न पडे। तेथ ज्ञान रोकडें। वोळख तूं ॥ ६०३॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १०॥

आणि मीवांचूनि कांहीं। आणिक गोमटें नाहीं। ऐसा निश्चयोचि तिहीं। जयाचा केला ॥ ६०४॥
शरीर वाचा मानस। पियालीं कृतनिश्चयाचा कोश। एक मीवांचूनि वास। न पाहती आन ॥ ६०५॥
किंबहुना निकट निज। जयाचें जाहलें मज। तेणें आपणयां आम्हां सेज। एकी केली ॥ ६०६॥
रिगतां वल्लभापुढें। नाहीं आंगीं जीवीं सांकडें। तिये कांतेचेनि पाडें। एकसरला जो ॥ ६०७॥
मिळोनि मिळतचि असे। समुद्रीं गंगाजळ जैसें। मी होऊनि मज तैसें। सर्वस्वें भजती ॥ ६०८॥
सूर्याच्या होण्यां होईजे। कां सूर्यासवेंचि जाइजे। हें विकलेपण साजे। प्रभेसि जेवीं ॥ ६०९॥
पैं पाणियाचिये भूमिके। पाणी तळपे कौतुकें। ते लहरी म्हणती लौकिकें। एऱ्हवीं तें पाणी ॥ ६१०॥
जो अनन्यु यापरी। मी जाहलाहि मातें वरी। तोचि तो मूर्तधारी। ज्ञान पैं गा ॥ ६११॥
आणि तीर्थें धौतें तटें। तपोवनें चोखटें। आवडती कपाटें। वसवूं जया ॥ ६१२॥
शैलकक्षांचीं कुहरें। जळाशय परिसरें। अधिष्ठी जो आदरें। नगरा न ये ॥ ६१३॥
बहु एकांतावरी प्रीति। जया जनपदाची खंती। जाण मनुष्याकारें मूर्ती। ज्ञानाची तो ॥ ६१४॥
आणिकहि पुढती। चिन्हें गा सुमती। ज्ञानाचिये निरुती-। लागीं सांगों ॥ ६१५॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतद्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोन्यथा ॥ ११॥

तरी परमात्मा ऐसें। जें एक वस्तु असे। तें जया दिसें। ज्ञानास्तव ॥ ६१६॥
तें एकवांचूनि आनें। जियें भवस्वर्गादि ज्ञानें। तें अज्ञान ऐसा मनें। निश्चयो केला ॥ ६१७॥
स्वर्गा जाणें हें सांडी। भवविषयीं कान झाडी। दे अध्यात्मज्ञानीं बुडी। सद्भावाची ॥ ६१८॥
भंगलिये वाटे। शोधूनिया अव्हांटे। निघिजे जेवीं नीटें। राजपंथें ॥ ६१९॥
तैसें ज्ञानजातां करी। आघवेंचि एकीकडे सारी। मग मन बुद्धि मोहरी। अध्यात्मज्ञानीं ॥ ६२०॥
म्हणे एक हेंचि आथी। येर जाणणें ते भ्रांती। ऐसी निकुरेंसी मती। मेरु होय ॥ ६२१॥
एवं निश्चयो जयाचा। द्वारीं आध्यात्मज्ञानाचा। ध्रुव देवो गगनींचा। तैसा राहिला ॥ ६२२॥
तयाच्या ठायीं ज्ञान। या बोला नाहीं आन। जे ज्ञानीं बैसलें मन। तेव्हांचि तें तो मी ॥ ६२३॥
तरी बैसलेपणें जें होये। बैसतांचि बोलें न होये। तरी ज्ञाना तया आहे। सरिसा पाडु ॥ ६२४॥
आणि तत्त्वज्ञान निर्मळ। फळे जें एक फळ। तें ज्ञेयही वरी सरळ। दिठी जया ॥ ६२५॥
एऱ्हवीं बोधा आलेनि ज्ञानें। जरी ज्ञेय न दिसेचि मनें। तरी ज्ञानलाभुही न मने। जाहला सांता ॥ ६२६॥
आंधळेनि हातीं दिवा। घेऊनि काय करावा ?। तैसा ज्ञाननिश्चयो आघवा। वायांचि जाय ॥ ६२७॥
जरि ज्ञानाचेनि प्रकाशें। परतत्त्वीं दिठी न पैसे। ते स्फूर्तीचि असे। अंध होऊनी ॥ ६२८॥
म्हणौनि ज्ञान जेतुलें दावीं। तेतुली वस्तुचि आघवी। तें देखे ऐशी व्हावी। बुद्धि चोख ॥ ६२९॥
यालागीं ज्ञानें निर्दोखें। दाविलें ज्ञेय देखे। तैसेनि उन्मेखें। आथिला जो ॥ ६३०॥

जेवढी ज्ञानाची वृद्धी। तेवढीच जयाची बुद्धी। तो ज्ञान हे शब्दीं। करणें न लगे ॥ ६३१॥
पैं ज्ञानाचिये प्रभेसवें। जयाची मती ज्ञेयीं पावे। तो हातधरणिया शिवे। परतत्त्वातें ॥ ६३२॥
तोचि ज्ञान हें बोलतां। विस्मो कवण पंडुसुता ?। काय सवितयातें सविता। म्हणावें असें ? ॥ ६३३॥
तंव श्रोतें म्हणती असो। न सांगें तयाचा अतिसो। ग्रंथोक्ती तेथ आडसो। घालितोसी कां ? ॥ ६३४॥
तुझा हाचि आम्हां थोरु। वक्तृत्वाचा पाहुणेरु। जे ज्ञानविषो फारु। निरोपिला ॥ ६३५॥
रसु होआवा अतिमात्रु। हा घेतासि कविमंत्रु। तरी अवंतूनि शत्रु। करितोसि कां गा ? ॥ ६३६॥
ठायीं बैसतिये वेळे। जे रससोय घेऊनि पळे। तियेचा येरु वोडव मिळे। कोणा अर्था ? ॥ ६३७॥
आघवाचि विषयीं भादी। परी सांजवणीं टेंकों नेदी। ते खुरतोडी नुसधी। पोषी कवण ? ॥ ६३८॥
तैसी ज्ञानीं मती न फांके। येर जल्पती नेणों केतुकें। परि तें असो निकें। केलें तुवां ॥ ६३९॥
जया ज्ञानलेशोद्देशें। कीजती योगादि सायासें। तें धणीचें आथी तुझिया ऐसें। निरूपण ॥ ६४०॥
अमृताची सातवांकुडी। लागो कां अनुघडी। सुखाच्या दिवसकोडी। गणिजतु कां ॥ ६४१॥
पूर्णचंद्रेंसीं राती। युग एक असोनि पहाती। तरी काय पाहात आहाती। चकोर ते ? ॥ ६४२॥
तैसें ज्ञानाचें बोलणें। आणि येणें रसाळपणें। आतां पुरे कोण म्हणे ?। आकर्णितां ॥ ६४३॥
आणि सभाग्यु पाहुणा ये। सुभगाचि वाढती होये। तैं सरों नेणें रससोये। ऐसें आथी ॥ ६४४॥
तैसा जाहला प्रसंगु। जे ज्ञानीं आम्हांसि लागु। आणि तुजही अनुरागु। आथि तेथ ॥ ६४५॥
म्हणौनि यया वाखाणा-। पासीं से आली चौगुणा। ना म्हणों नयेसि देखणा ?। होसी ज्ञानी ॥ ६४६॥
तरी आतां ययावरी। प्रज्ञेच्या माजघरीं। पदें साच करीं। निरूपणीं ॥ ६४७॥
या संतवाक्यासरिसें। म्हणितलें निवृत्तिदासें। माझेंही जी ऐसें। मनोगत ॥ ६४८॥
यावरी आतां तुम्हीं। आज्ञापिला स्वामी। तरी वायां वागू मी। वाढों नेदी ॥ ६४९॥
एवं इयें अवधारा। ज्ञानलक्षणें अठरा। श्रीकृष्णें धनुर्धरा। निरूपिली ॥ ६५०॥
मग म्हणें या नांवें। ज्ञान एथ जाणावें। हे स्वमत आणि आघवें। ज्ञानियेही म्हणती ॥ ६५१॥
करतळावरी वाटोळा। डोलतु देखिजे आंवळा। तैसें ज्ञान आम्हीं डोळां। दाविलें तुज ॥ ६५२॥
आतां धनंजया महामती। अज्ञान ऐसी वदंती। तेंही सांगों व्यक्ती। लक्षणेंसीं ॥ ६५३॥
एऱ्हवीं ज्ञान फुडें जालिया। अज्ञान जाणवे धनंजया। जें ज्ञान नव्हे तें अपैसया। अज्ञानचि ॥ ६५४॥
पाहें पां दिवसु आघवा सरे। मग रात्रीची वारी उरे। वांचूनि कांहीं तिसरें। नाहीं जेवीं ॥ ६५५॥
तैसें ज्ञान जेथ नाहीं। तेंचि अज्ञान पाहीं। तरी सांगों कांहीं कांहीं। चिन्हें तियें ॥ ६५६॥
तरी संभावने जिये। जो मानाची वाट पाहे। सत्कारें होये। तोषु जया ॥ ६५७॥
गर्वें पर्वताचीं शिखरें। तैसा महत्त्वावरूनि नुतरे। तयाचिया ठायीं पुरे। अज्ञान आहे ॥ ६५८॥
आणि स्वधर्माची मांगळी। बांधे वाचेच्या पिंपळीं। उभिला जैसा देउळीं। जाणोनि कुंचा ॥ ६५९॥
घाली विद्येचा पसारा। सूये सुकृताचा डांगोरा। करी तेतुलें मोहरा। स्फीतीचिया ॥ ६६०॥
आंग वरिवरी चर्ची। जनातें अभ्यर्चितां वंची। तो जाण पां अज्ञानाची। खाणी एथ ॥ ६६१॥
आणि वन्ही वनीं विचरे। तेथ जळती जैसीं जंगमें स्थावरें। तैसें जयाचेनि आचारें। जगा दुःख ॥ ६६२॥
कौतुकें जें जें जल्पे। तें साबळाहूनि तीख रुपे। विषाहूनि संकल्पें। मारकु जो ॥ ६६३॥
तयातें बहु अज्ञान। तोचि अज्ञानाचें निधान। हिंसेसि आयतन। जयाचें जिणें ॥ ६६४॥
आणि फुंकें भाता फुगे। रेचिलिया सवेंचि उफगे। तैसा संयोगवियोगें। चढे वोहटे ॥ ६६५॥
पडली वारयाचिया वळसा। धुळी चढे आकाशा। हरिखा वळघे तैसा। स्तुतीवेळे ॥ ६६६॥

निंदा मोटकी आइके। आणि कपाळ धरूनि ठाके। थेंबें विरे वारोनि शोखे। चिखलु जैसा ॥ ६६७॥
तैसा मानापमानीं होये। जो कोण्हीचि उर्मी न साहे। तयाच्या ठायीं आहे। अज्ञान पुरें ॥ ६६८॥
आणि जयाचिया मनीं गांठी। वरिवरी मोकळी वाचा दिठी। आंगें मिळे जीवें पाठीं। भलतया दे ॥ ६६९॥
व्याधाचे चारा घालणें। तैसें प्रांजळ जोगावणें। चांगाचीं अंतःकरणें। विरु करी ॥ ६७०॥
गार शेवाळें गुंडाळली। कां निंबोळी जैसी पिकली। तैसी जयाची भली। बाह्य क्रिया ॥ ६७१॥
अज्ञान तयाचिया ठायीं। ठेविलें असे पाहीं। याबोला आन नाहीं। सत्य मानीं ॥ ६७२॥
आणि गुरुकुळीं लाजे। जो गुरुभक्ती उभजे। विद्या घेऊनि माजे। गुरूसींचि जो ॥ ६७३॥
तयाचें नाम घेणें। तें वाचे शूद्रान्न होणें। परी घडलें लक्षणें। बोलतां इयें ॥ ६७४॥
आता गुरुभक्तांचें नांव घेवों। तेणें वाचेसि प्रायश्चित देवों। गुरुसेवका नांव पावों। सूर्यु जैसा ॥ ६७५॥
येतुलेनि पांगु पापाचा। निस्तरेल हे वाचा। जो गुरुतल्पगाचा। नामीं आला ॥ ६७६॥
हा ठायवरी। तया नामाचें भय हरी। मग म्हणे अवधारीं। आणिकें चिन्हें ॥ ६७७॥
तरि आंगें कर्में ढिला। जो मनें विकल्पें भरला। अडवींचा अवगळला। कुहा जैसा ॥ ६७८॥
तया तोंडीं कांटिवडे। आंतु नुसधीं हाडें। अशुचि तेणें पाडें। सबाह्य जो ॥ ६७९॥
जैसें पोटालागीं सुणें। उघडें झांकलें न म्हणे। तैसें आपलें परावें नेणे। द्रव्यालागीं ॥ ६८०॥
इया ग्रामसिंहाचिया ठायीं। जैसा मिळणी ठावो अठावो नाहीं। तैसा स्त्रीविषयीं कांहीं। विचारीना ॥ ६८१॥
कर्माचा वेळु चुके। कां नित्य नैमित्तिक ठाके। तें जया न दुखे। जीवामाजीं ॥ ६८२॥
पापी जो निसुगु। पुण्याविषयीं अतिनिलागु। जयाचिया मनीं वेगु। विकल्पाचा ॥ ६८३॥
तो जाण निखिळा। अज्ञानाचा पुतळा। जो बांधोनि असे डोळां। वित्ताशेतें ॥ ६८४॥
आणि स्वार्थें अळुमाळें। जो धैर्यापासोनि चळे। जैसें तृणबीज ढळे। मुंगियेचेनी ॥ ६८५॥
पावो सूदलिया सवें। जैसें थिल्लर कालवे। तैसा भयाचेनि नांवें। गजबजे जो ॥ ६८६॥
मनोरथांचिया धारसा। वाहणें जयाचिया मानसा। पूरीं पडिला जैसा। दुधिया पाहीं ॥ ६८७॥
वायूचेनि सावायें। धू दिगंतरा जाये। दुःखवार्ता होये। तसें जया ॥ ६८८॥
वाउधणाचिया परी। जो आश्रो कहींचि न धरी। क्षेत्रीं तीर्थीं पुरीं। थारों नेणे ॥ ६८९॥
कां मातलिया सरडा। पुढती बुडुख पुढती शेंडा। हिंडणवारा कोरडा। तैसा जया ॥ ६९०॥
जैसा रोविल्याविणें। रांजणु थारों नेणे। तैसा पडे तैं राहणें। एऱ्हवीं हिंडे ॥ ६९१॥
तयाच्या ठायीं उदंड। अज्ञान असे वितंड। जो चांचल्यें भावंड। मर्कटाचें ॥ ६९२॥
आणि पैं गा धनुर्धरा। जयाचिया अंतरा। नाहीं वोढावारा। संयमाचा ॥ ६९३॥
लेंडिये आला लोंढा। न मनी वाळुवेचा वरवंडा। तैसा निषेधाचिया तोंडा। बिहेना जो ॥ ६९४॥
व्रतातें आड मोडी। स्वधर्मु पायें वोलांडी। नियमाची आस तोडी। जयाची क्रिया ॥ ६९५॥
नाहीं पापाचा कंटाळा। नेणें पुण्याचा जिव्हाळा। लाजेचा पेंडवळा। खाणोनि घाली ॥ ६९६॥
कुळेंसीं जो पाठमोरा। वेदाज्ञेसीं दुऱ्हा। कृत्याकृत्यव्यापारा। निवाडु नेणे ॥ ६९७॥
वसू जैसा मोकाटु। वारा जैसा अफाटु। फुटला जैसा पाटु। निर्जनीं ॥ ६९८॥
आंधळें हातिरूं मातलें। कां डोंगरीं जैसें पेटलें। तैसें विषयीं सुटलें। चित्त जयाचें ॥ ६९९॥
पैं उबधडां काय न पडे। मोकाटु कोणां नातुडे। ग्रामद्वारींचे आडें। नोलांडी कोण ॥ ७००॥
जैसें सत्रीं अन्न जालें। कीं सामान्या बीक आलें। वाणसियेचें उभलें। कोण न रिगे ? ॥ ७०१॥
तैसें जयाचें अंतःकरण। तयाच्या ठायीं संपूर्ण। अज्ञानाची जाण। ऋद्धि आहे ॥ ७०२॥

आणि विषयांची गोडी। जो जीतु मेला न संडी। स्वर्गींही खावया जोडी। येथूनिची ॥ ७०३॥
जो अखंड भोगा जचे। जया व्यसन काम्यक्रियेचें। मुख देखोनि विरक्ताचें। सचैल करी ॥ ७०४॥
विषो शिणोनि जाये। परि न शिणे सावधु नोहे। कुहीला हातीं खाये। कोढी जैसा ॥ ७०५॥
खरी टेंकों नेदी उडे। लातौनि फोडी नाकाडें। तऱ्ही जेवीं न काढे। माघौता खरु ॥ ७०६॥
तैसा जो विषयांलागीं। उडी घाली जळतिये आगीं। व्यसनाची आंगीं। लेणीं मिरवी ॥ ७०७॥
फुटोनि पडे तंव। मृग वाढवी हांव। परी न म्हणे ते माव। रोहिणीची ॥ ७०८॥
तैसा जन्मोनि मृत्यूवरी। विषयीं त्रासितां बहुतीं परीं। तऱ्ही त्रासु नेघे धरी। अधिक प्रेम ॥ ७०९॥
पहिलिये बाळदशे। आई बा हेंचि पिसें। तें सरे मग स्त्रीमांसें। भुलोनि ठाके ॥ ७१०॥
मग स्त्री भोगितां थावों। वृद्धाप्य लागे येवों। तेव्हां तोचि प्रेमभावो। बाळकांसि आणी ॥ ७११॥
आंधळें व्यालें जैसें। तैसा बाळें परिवसे। परि जीवें मरे तों न त्रासे। विषयांसि जो ॥ ७१२॥
जाण तयाच्या ठायीं। अज्ञानासि पारु नाहीं। आतां आणीक कांहीं। चिन्हें सांगों ॥ ७१३॥
तरि देह हाचि आत्मा। ऐसेया जो मनोधर्मा। वळघोनियां कर्मा। आरंभु करी ॥ ७१४॥
आणि उणें कां पुरें। जें जें कांहीं आचरे। तयाचेनि आविष्करें। कुंथों लागे ॥ ७१५॥
डोईये ठेविलेनि भोजें। देवलविसें जेवीं फुंजे। तैसा विद्यावयसा माजे। उताणा चाले ॥ ७१६॥
म्हणे मीचि एकु आथी। माझ्यांचि घरीं संपत्ती। माझी आचरती रीती। कोणा आहे ॥ ७१७॥
नाहीं माझेनि पाडें वाडु। मी सर्वज्ञ एकचि रूढु। ऐसा गर्वतुष्टीगंडु। घेऊनि ठाके ॥ ७१८॥
व्याधि लागलिया माणुसा। नयेचि भोग दाऊं जैसा। निकें न साहे जो तैसा। पुढिलांचें ॥ ७१९॥
पैं गुण तेतुला खाय। स्नेह कीं जाळितु जाय। जेथ ठेविजे तेथ होय। मसीऐसें ॥ ७२०॥
जीवनें शिंपिला तिडपिडी। विजिला प्राण सांडी। लागला तरी काडी। उरों नेदी ॥ ७२१॥
आळुमाळ प्रकाशु करी। तेतुलेनीच उबारा धरी। तैसिया दीपाचि परी। सुविद्यु जो ॥ ७२२॥
औषधाचेनि नांवें अमृतें। जैसा नवज्वरु आंबुथे। कां विषचि होऊनि परतें। सर्पा दूध ॥ ७२३॥
तैसा सद्‌गुणीं मत्सरु। व्युत्पत्ती अहंकारु। तपोज्ञानें अपारु। ताठा चढे ॥ ७२४॥
अंत्यु राणिवे बैसविला। आरें धारणु गिळिला। तैसा गर्वें फुगला। देखसी जो ॥ ७२५॥
जो लाटणें ऐसा न लवे। पाथरु तेवीं न द्रवे। गुणियासि नागवे। फोडसें जैसें ॥ ७२६॥
किंबहुना तयापाशीं। अज्ञान आहे वाढीसीं। हें निकरें गा तुजसीं। बोलत असों ॥ ७२७॥
आणीकही धनंजया। जो गृहदेह सामग्रिया। न देखे कालचेया। जन्मातें गा ॥ ७२८॥
कृतघ्ना उपकारु केला। कां चोरा व्यवहारु दिधला। निसुगु स्तविला। विसरे जैसा ॥ ७२९॥
वोढाळितां लाविलें। तें तैसेंच कान पूंस वोलें। कीं पुढती वोढाळुं आलें। सुणें जैसें ॥ ७३०॥
बेडूक सापाचिया तोंडीं। जातसे सबुडबुडीं। तो मक्षिकांचिया कोडीं। स्मरेना कांहीं ? ॥ ७३१॥
तैसीं नवही द्वारें स्रवती। आंगीं देहाची लुती जिती। जेणें जाली तें चित्तीं। सलेना जया ॥ ७३२॥
मातेच्या उदरकुहरीं। पचूनि विष्ठेच्या दाथरीं। जठरीं नवमासवरी। उकडला जो ॥ ७३३॥
तें गर्भींची जे व्यथा। कां जें जालें उपजतां। तें कांहींचि सर्वथा। नाठवी जो ॥ ७३४॥
मलमूत्रपंकीं। जे लोळतें बाळ अंकीं। तें देखोनि जो न थुंकीं। त्रासु नेघे ॥ ७३५॥
कालचि ना जन्म गेलें। पाहेचि पुढती आलें। ऐसें हें कांहीं वाटलें। नाहीं जया ॥ ७३६॥
आणि पैं तयाची परी। जीविताची फरारी। देखोनि जो न करी। मृत्युचिंता ॥ ७३७॥
जिणेयाचेनि विश्वासें। मृत्यु एक एथ असे। हें जयाचेनि मानसें। मानिजेना ॥ ७३८॥

अल्पोदकींचा मासा। हें नाटे ऐसिया आशा। न वचेचि कां जैसा। अगाध डोहां ॥ ७३९ ॥
कां गोरीचिया भुली। मृग व्याधा दृष्टी न घाली। गळु न पाहतां गिळिली। उंडी मीनें ॥ ७४०॥
दीपाचिया झगमगा। जाळील हें पतंगा। नेणवेचि पैं गा। जयापरी ॥ ७४१॥
गव्हारु निद्रासुखें। घर जळत असे तें न देखे। नेणतां जेंवी विखें। रांधिलें अन्न ॥ ७४२॥
तैसा जीविताचेनि मिषें। हा मृत्युचि आला असे। हें नेणेचि राजसें। सुखें जो गा ॥ ७४३॥
शरीरींचीं वाढी। अहोरात्रांची जोडी। विषयसुखप्रौढी। साचचि मानी ॥ ७४४॥
परी बापुडा ऐसें नेणे। जें वेश्येचें सर्वस्व देणें। तेंचि तें नागवणें। रूप एथ ॥ ७४५॥
संवचोराचें साजणें। तेंचि तें प्राण घेणें। लेपा स्नपन करणें। तोचि नाशु ॥ ७४६॥
पांडुरोगें आंग सुटलें। तें तयाचि नांवे खुंटलें। तैसें नेणें भुललें। आहारनिद्रा ॥ ७४७॥
सन्मुख शूला। धांवतया पायें चपळा। प्रतिपदीं ये जवळा। मृत्यु जेवीं ॥ ७४८॥
तेवीं देहा जंव जंव वाढु। जंव जंव दिवसांचा पवाडु। जंव जंव सुरवाडु। भोगांचा या ॥ ७४९॥
तंव तंव अधिकाधिकें। मरण आयुष्यातें जिंके। मीठ जेवीं उदकें। घांसिजत असे ॥ ७५०॥
तैसें जीवित्व जाये। तयास्तव काळु पाहे। हें हातोहातींचें नव्हे। ठाउकें जया ॥ ७५१॥
किंबहुना पांडवा। हा आंगींचा मृत्यु नीच नवा। न देखे जो मावा। विषयांचिया ॥ ७५२॥
तो अज्ञानदेशींचा रावो। या बोला महाबाहो। न पडे गा ठावो। आणिकांचा ॥ ७५३॥
पैं जीविताचेनि तोखें। जैसा कां मृत्यु न देखे। तैसाचि तारुण्ये पोखें। जरा न गणी ॥ ७५४॥
कडाडीं लोटला गाडा। कां शिखरौनि सुटला धोंडा। तैसा न देखे जो पुढां। वार्धक्य आहे ॥ ७५५॥
कां आडवोहळा पाणी आलें। कां जैसे म्हैसयाचें झुंज मातलें। तैसें तारुण्याचे चढलें। भुररें जया ॥ ७५६॥
पुष्टि लागे विघरों। कांति पाहे निसरों। मस्तक आदरीं शिरों-। भागीं कंप ॥ ७५७॥
दाढी साउळ धरी। मान हालौनि वारी। तरी जो करी। मायेचा पैसु ॥ ७५८॥
पुढील उरीं आदळे। तंव न देखे जेवीं आंधळें। कां डोळ्यावरलें निगळे। आळशी तोषें ॥ ७५९॥
तैसें तारुण्य आजिचें। भोगितां वृद्धाप्य पाहेचें। न देखे तोचि साचें। अज्ञानु गा ॥ ७६०॥
देखे अक्षमें कुब्जें। कीं विटावूं लागे फुंजें। परी न म्हणे पाहे माझें। ऐसेंचि भवे ॥ ७६१॥
आणि आंगीं वृद्धाप्यतेची। संज्ञा ये मरणाची। परी जया तारुण्याची। भुली न फिटे ॥ ७६२॥
तो अज्ञानाचें घर। हें साचचि घे उत्तर। तेवींचि परियेसीं थोर। चिन्हें आणिक ॥ ७६३॥
तरि वाघाचिये अडवे। एक वेळ आला चरोनि दैवें। तेणें विश्वासें पुढती धांवे। वसू जैसा ॥ ७६४॥
कां सर्पघराआंतु। अवचटें ठेवा आणिला स्वस्थु। येतुलियासाठीं निश्चितु। नास्तिकु होय ॥ ७६५॥
तैसेनि अवचटें हें। एकदोनी वेळां लाहे। एथ रोग एक आहे। हें मानीना जो ॥ ७६६॥
वैरिया नीद आली। आतां द्वंद्वं माझीं सरलीं। हें मानी तो सपिली। मुकला जेवीं ॥ ७६७॥
तैसी आहारनिद्रेची उजरी। रोग निवांतु जोंवरी। तंव जो न करी। व्याधी चिंता ॥ ७६८॥
आणि स्त्रीपुत्रादिमेळें। संपत्ति जंव जंव फळे। तेणें रजें डोळे। जाती जयाचे ॥ ७६९॥
सर्वेचि वियोगु पडैल। विळौनी विपत्ति येईल। हें दुःख पुढील। देखेना जो ॥ ७७०॥
तो अज्ञान गा पांडवा। आणि तोही तोचि जाणावा। जो इंद्रियें अव्हासवा। चारी एथ ॥ ७७१॥
वयसेचेनि उवायें। संपत्तीचेनि सावायें। सेव्यासेव्य जाये। सरकटितु ॥ ७७२॥
न करावें तें करी। असंभाव्य मनीं धरी। चिंतू नये तें विचारी। जयाची मती ॥ ७७३॥
रिघे जेथ न रिघावें। मागे जें न घ्यावें। स्पर्शे जेथ न लागावें। आंग मन ॥ ७७४॥

न जावें तेथ जाये। न पाहावें तें जो पाहे। न खावें तें खाये। तेवींचि तोषे ॥ ७७५॥
न धरावा तो संगु। न लागावें तेथ लागु। नाचरावा तो मार्गु। आचरे जो ॥ ७७६॥
नायकावें तें आइके। न बोलावें तें बके। परी दोष होतील हें न देखे। प्रवर्ततां ॥ ७७७॥
आंगा मनासि रुचावें। येतुलेनि कृत्याकृत्य नाठवें। जो करणेयाचेनि नांवें। भलतेंचि करी ॥ ७७८॥
परि पाप मज होईल। कां नरकयातना येईल। हें कांहींचि पुढील। देखेना जो ॥ ७७९॥
तयाचेनि आंगलगें। अज्ञान जगीं दाटुगें। जें सज्ञानाही संगें। झोंबों सके ॥ ७८०॥
परी असो हें आइक। अज्ञान चिन्हें आणिक। जेणें तुज सम्यक्। जाणवे तें ॥ ७८१॥
तरी जयाची प्रीति पुरी। गुंतली देखसी घरीं। नवगंधकेसरीं। भ्रमरी जैशी ॥ ७८२॥
साकरेचिया राशी। बैसली नुठे माशी। तैसेनि स्त्रीचित्त आवेशीं। जयाचें मन ॥ ७८३॥
ठेला बेडूक कुंडीं। मशक गुंतला शेंबुडीं। जैसा ढोरु सबुडबुडीं। रुतला पंकीं ॥ ७८४॥
तैसें घरींहूनि निघणें। नाहीं जीवें मनें प्राणें। जया साप होऊनि असणें। भाटीं तियें ॥ ७८५॥
प्रियोत्तमाचिया कंठीं। प्रमदा  घे आटी। तैशी जीवेंसी कोंपटी। धरूनि ठाके ॥ ७८६॥
मधुरसोद्देशें। मधुकर जचे जैसें। गृहसंगोपन तैसें। करी जो गा ॥ ७८७॥
म्हातारपणीं जालें। मा आणिक एक विपाईलें। तयाचें कां जेतुलें। मातापितरां ॥ ७८८॥
तेतुलेनि पाडें पार्था। घरीं जया प्रेम आस्था। आणि स्त्रीवांचूनि सर्वथा। जाणेना जो ॥ ७८९॥
तैसा स्त्रीदेहीं जो जीवें। पडोनिया सर्वभावें। कोण मी काय करावें। कांहीं नेणे ॥ ७९०॥
महापुरुषाचें चित्त। जालिया वस्तुगत। ठाके व्यवहारजात। जयापरी ॥ ७९१॥
हानि लाज न देखे। परापवादु नाइके। जयाचीं इंद्रियें एकमुखें। स्त्रिया केलीं ॥ ७९२॥
चित्त आराधी स्त्रीयेचें। आणि तियेचेनि छंदें नाचे। माकड गारुडियाचें। जैसें होय ॥ ७९३॥
आपणपेंही शिणवी। इष्टमित्र दुखवी। मग कवडाचि वाढवी। लोभी जैसा ॥ ७९४॥
तैसा दानपुण्यें खांची। गोत्रकुटुंबा वंची। परी गारी भरी स्त्रियेची। उणी हों नेदी ॥ ७९५॥
पूजिती दैवतें जोगावी। गुरूतें बोलें झकवी। मायबापां दावी। निदारपण ॥ ७९६॥
स्त्रियेच्या तरी विखीं। भोगुसंपत्ती अनेकीं। आणी वस्तु निकी। जे जे देखे ॥ ७९७॥
प्रेमाथिलेनि भक्तें। जैसेनि भजिजे कुळदैवतें। तैसा एकाग्रचित्तें। स्त्री जो उपासी ॥ ७९८॥
साच आणि चोख। तें स्त्रियेसीचि अशेख। येरांविषयीं जोगावणूक। तेही नाहीं ॥ ७९९॥
इयेतें हन कोणी देखैल। इयेसी वेखासें जाईल। तरी युगचि बुडैल। ऐसें जया ॥ ८००॥
नायत्यांभेण। न मोडिजे नागांची आण। तैसी पाळी उणखुण। स्त्रीयेची जो ॥ ८०१॥
किंबहुना धनंजया। स्त्रीचि सर्वस्व जया। आणि तियेचिया जालिया-। लागीं प्रेम ॥ ८०२॥
आणिकही जें समस्त। तियेचें संपत्तिजात। तें जीवाहूनि आप्त। मानी जो कां ॥ ८०३॥
तो अज्ञानासी मूळ। अज्ञाना त्याचेनि बळ। हें असो केवळ। तेंचि रूप ॥ ८०४॥
आणि मातलिया सागरीं। मोकललिया तरी। लाटांच्या येरझारीं। आंदोळे जेवीं ॥ ८०५॥
तेवीं प्रिय वस्तु पावे। आणि सुखें जो उंचावे। तैसाचि अप्रियासवें। तळवटु घे ॥ ८०६॥
ऐसेनि जयाचे चित्तीं। वैषम्यसाम्याची वोखती। वाहे तो महामती। अज्ञान गा ॥ ८०७॥
आणि माझ्या ठायीं भक्ती। फळालागीं जया आर्ती। धनोद्देशें विरक्ती। नटणें जेवीं ॥ ८०८॥
नातरी कांताच्या मानसी। रिगोनि स्वैरिणी जैसी। राहाटे जारेंसीं। जावयालागीं ॥ ८०९॥
तैसा मातें किरीटी। भजती गा पाउटी। करूनि जो दिठी। विषो सूये ॥ ८१०॥

आणि भजिन्नलियासवें। तो विषो जरी न पावे। तरी सांडी म्हणे आघवें। टवाळ हें ॥ ८११॥
कुणबट कुळवाडी। तैसा आन आन देव मांडी। आदिलाची परवडी। करी तया ॥ ८१२॥
तया गुरुमार्गा टेंकें। जयाचा सुगरवा देखे। तरी तयाचा मंत्र शिके। येरु नेघे ॥ ८१३॥
प्राणिजातेंसीं निष्ठुरु। स्थावरीं बहु भरु। तेवींचि नाहीं एकसरु। निर्वाहो जया ॥ ८१४॥
माझी मूर्ति निफजवी। ते घराचे कोनीं बैसवी। आपण देवो देवी। यात्रे जाय ॥ ८१५॥
नित्य आराधन माझें। काजीं कुळदैवता भजे। पर्वविशेषें कीजे। पूजा आना ॥ ८१६॥
माझें अधिष्ठान घरीं। आणि वोवसे आनाचे करी। पितृकार्यावसरीं। पितरांचा होय ॥ ८१७॥
एकादशीच्या दिवशीं। जेतुला पाडु आम्हांसी। तेतुलाचि नागांसी। पंचमीच्या दिवशीं ॥ ८१८॥
चौथ मोटकी पाहे। आणि गणेशाचाचि होये। चावदसी म्हणे माये। तुझाचि वो दुर्गे ॥ ८१९॥
नित्य नैमित्तिकें कर्मे सांडी। मग बैसे नवचंडी। आदित्यवारीं वाढी। बहिरवां पात्रीं ॥ ८२०॥
पाठीं सोमवार पावे। आणि बेलेंसी लिंगा धांवे। ऐसा एकलाचि आघवे। जोगावी जो ॥ ८२१॥
ऐसा अखंड भजन करी। उगा नोहे क्षणभरी। अवघेन गांवद्वारीं। अहेव जैसी ॥ ८२२॥
ऐसेनि जो भक्तु। देखसी सैरा धांवतु। जाण अज्ञानाचा मूर्तु। अवतार तो ॥ ८२३॥
आणि एकांतें चोखटें। तपोवनें तीर्थे तटें। देखोनि जो गा विटे। तोहि तोचि ॥ ८२४॥
जया जनपदीं सुख। गजबजेचें कवतिक। वानूं आवडे लौकिक। तोहि तोची ॥ ८२५॥
आणि आत्मा गोचरु होये। ऐसी जे विद्या आहे। ते आइकोनि डौर वाहे। विद्वांसु जो ॥ ८२६॥
उपनिषदांकडे न वचे। योगशास्त्र न रुचे। अध्यात्मज्ञानीं जयाचें। मनचि नाहीं ॥ ८२७॥
आत्मचर्चा एकी आथी। ऐसिये बुद्धीची भिंती। पाडूनि जयाची मती। वोढाळ जाहली ॥ ८२८॥
कर्मकांड तरी जाणे। मुखोद्गत पुराणें। ज्योतिषीं तो म्हणे। तैसेंचि होय ॥ ८२९॥
शिल्पीं अति निपुण। सूपकर्मींही प्रवीण। विधि आथर्वण। हातीं आथी ॥ ८३०॥
कोकीं नाहीं ठेलें। भारत करी म्हणितलें। आगम आफाविले। मूर्त होतीं ॥ ८८३१॥
नीतिजात सुझे। वैद्यकही बुझे। काव्यनाटकीं दुजें। चतुर नाहीं ॥ ८३२॥
स्मृतींची चर्चा। दंशु जाणे गारुडियाचा। निघंटु प्रज्ञेचा। पाइकी करी ॥ ८३३॥
पैं व्याकरणीं चोखडा। तर्कीं अतिगाढा। परी एक आत्मज्ञानीं फुडा। जात्यंधु जो ॥ ८३४॥
तें एकवांचूनि आघवां शास्त्रीं। सिद्धांत निर्माणधात्री। परी जळों तें मूळनक्षत्रीं। न पाहें गा ॥ ८३५॥
मोराआंगीं अशेषें। पिसें असतीं डोळसें। परी एकली दृष्टि नसे। तैसें तें गा ॥ ८३६॥
जरी परमाणूएवढें। संजीवनीमूळ जोडे। तरी बहु काय गाडे। भरणें येरें ? ॥ ८३७॥
आयुष्येंवीण लक्षणें। सिसेंवीण अळंकरणें। वोहरेंवीण वाधावणें। तो विटंबु गा ॥ ८३८॥
तैसें शास्त्रजात जाण। आघवेंचि अप्रमाण। अध्यात्मज्ञानेंविण। एकलेनी ॥ ८३९॥
यालागीं अर्जुना पाहीं। अध्यात्मज्ञानाच्या ठायीं। जया नित्यबोधु नाहीं। शास्त्रमूढा ॥ ८४०॥
तया शरीर जें जालें। तें अज्ञानाचें बीं विरुढलें। तयाचें व्युत्पन्नत्व गेलें। अज्ञानवेलीं ॥ ८४१॥
तो जें जें बोले। तें अज्ञानचि फुललें। तयाचें पुण्य जें फळलें। तें अज्ञान गा ॥ ८४२॥
आणि अध्यात्मज्ञान कांहीं। जेणें मानिलेंचि नाहीं। तो ज्ञानार्थु न देखे काई। हें बोलावें असें ? ॥ ८४३॥
ऐलीचि थडी न पवतां। पळे जो माघौता। तया पैलद्वीपींची वार्ता। काय होय ? ॥ ८४४॥
कां दारवंठाचि जयाचें। शीर रोंविलें खांचे। तो केवीं परिवरींचें। ठेविलें देखे ? ॥ ८४५॥
तेवीं अध्यात्मज्ञानीं जया। अनोळख धनंजया। तया ज्ञानार्थु देखावया। विषो काई ? ॥ ८४६॥

म्हणौनि आतां विशेषें। तो ज्ञानाचें तत्त्व न देखे। हें सांगावें आंखेंलेखें। न लगे तुज ॥ ८४७॥
जेव्हां सगर्भे वाढिलें। तेव्हांचि पोटींचें धालें। तैसें मागिलें पदें बोलिलें। तेंचि होय ॥ ८४८॥
वांचूनियां वेगळें। रूप करणें हें न मिळे। जेवीं अवंतिलें आंधळें। तें दुजेनसीं ये ॥ ८४९॥
एवं इये उपरतीं। अज्ञानचिन्हें मागुतीं। अमानित्वादि प्रभृती। वाखाणिलीं ॥ ८५०॥
जे ज्ञानपदें अठरा। केलियां येरी मोहरां। अज्ञान या आकारा। सहजें येती ॥ ८५१॥
मागां श्लोकाचेनि अर्धार्धें। ऐसें सांगितलें श्रीमुकुंदें। ना उफराटीं इयें ज्ञानपदें। तेंचि अज्ञान ॥ ८५२॥
म्हणौनि इया वाहणीं। केली म्यां उपलवणी। वांचूनि दुधा मेळऊनि पाणी। फार कीजे ? ॥ ८५३॥
तैसें जी न बडबडीं। पदाची कोर न सांडी। परी मूळध्वनींचिये वाढी। निमित्त जाहलों ॥ ८५४॥
तंव श्रोते म्हणती राहें। कें परिहारा ठावो आहे ?। बिहिसी कां वायें। कविपोषका ? ॥ ८५५॥
तूतें श्रीमुरारी। म्हणितलें आम्ही प्रकट करीं। जें अभिप्राय गव्हरीं। झांकिले आम्हीं ॥ ८५६॥
तें देवाचें मनोगत। दावित आहासी तूं मूर्त। हेंही म्हणतां चित्त। दाटैल तुझें ॥ ८५७॥
म्हणौनि असो हें न बोलों। परि साविया गा तोषलों। जे ज्ञानतरिये मेळविलों। श्रवण सुखाचिये ॥ ८५८॥
आतां इयावरी। जे तो श्रीहरी। बोलिला तें करीं। कथन वेगां ॥ ८५९॥
इया संतवाक्यासरिसें। म्हणितलें निवृत्तिदासें। जी अवधारा तरी ऐसें। बोलिलें देवें ॥ ८६०॥
म्हणती तुवां पांडवा। हा चिन्हसमुच्चयो आघवा। आयकिला तो जाणावा। अज्ञानभागु ॥ ८६१॥
इया अज्ञानविभागा। पाठी देऊनि पैं गा। ज्ञानविखीं चांगा। दृढा होईजे ॥ ८६२॥
मग निर्वाळिलेनि ज्ञानें। ज्ञेय भेटेल मनें। तें जाणावया अर्जुनें। आस केली ॥ ८६३॥
तंव सर्वज्ञांचा रावो। म्हणे जाणौनि तयाचा भावो। परिसें ज्ञेयाचा अभिप्रावो। सांगों आतां ॥ ८६४॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मृतमश्नुते ॥ अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२॥

तरि ज्ञेय ऐसें म्हणणें। वस्तूतें येणेंचि कारणें। जें ज्ञानेंवांचूनि कवणें। उपायें नये ॥ ८६५॥
आणि जाणितलेयावरौतें। कांहींच करणें नाहीं जेथें। जाणणेंचि तन्मयातें। आणी जयाचें ॥ ८६६॥
जें जाणितलेयासाठीं। संसार काढूनियां कांठीं। जिरोनि जाइजे पोटीं। नित्यानंदाच्या ॥ ८६७॥
तें ज्ञेय गा ऐसें। आदि जया नसे। परब्रह्म आपैसें। नाम जया ॥ ८६८॥
जें नाहीं म्हणों जाइजे। तंव विश्वाकारें देखिजे। आणि विश्वचि ऐसें म्हणिजे। तरि हे माया ॥ ८६९॥
रूप वर्ण व्यक्ती। नाहीं दृश्य दृष्टा स्थिती। तरी कोणें कैसें आथी। म्हणावें पां ॥ ८७०॥
आणि साचचि जरी नाहीं। तरी महदादि कोणें ठाई। स्फुरत कैचें काई। तेणेंवीण असे ? ॥ ८७१॥
म्हणौनि आथी नाथी हे बोली। जें देखोनि मुकी जाहली। विचारेंसीं मोडली। वाट जेथें ॥ ८७२॥
जैसी भांडघटशरावीं। तदाकारें असे पृथ्वी। तैसें सर्व होऊनियां सर्वीं। असे जे वस्तु ॥ ८७३॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतो क्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३॥

आघवांचि देशीं काळीं। नव्हतां देशकाळांवेगळी। जे क्रिया स्थूळास्थूळीं। तेचि हात जयाचे ॥ ८७४॥
तयातें याकारणें। विश्वबाहू ऐसें म्हणणें। जें सर्वचि सर्वपणें। सर्वदा करी ॥ ८७५॥

आणि समस्तांही ठाया। एके काळीं धनंजया। आलें असे म्हणौनि जया। विश्वांघ्रीनाम ॥ ८७६ ॥
पैं सवितया आंग डोळे। नाहींत वेगळे वेगळे। तैसें सर्वद्रष्टे सकळें। स्वरूपें जें ॥ ८७७ ॥
म्हणौनि विश्वतश्चक्षु। हा अचक्षूच्या ठायीं पक्षु। बोलावया दक्षु। जाहला वेदु ॥ ८७८ ॥
जें सर्वांचे शिरावरी। नित्य नांदे सर्वांपरी। ऐसिये स्थितीवरी। विश्वमूर्धा म्हणिपे ॥ ८७९ ॥
पैं गा मूर्ति तेंचि मुख। हुताशना जैसें देख। तैसें सर्वपणें अशेख। भोक्ते जे ॥ ८८० ॥
यालागीं तया पार्था। विश्वतोमुख हे व्यवस्था। आली वाक्पथा। श्रुतीचिया ॥ ८८१ ॥
आणि वस्तुमात्रीं गगन। जैसें असे संलग्न। तैसें शब्दजातीं कान। सर्वत्र जया ॥ ८८२ ॥
म्हणौनि आम्हीं तयातें। म्हणों सर्वत्र आइकतें। एवं जें सर्वांतें। आवरूनि असे ॥ ८८३ ॥
एऱ्हवीं तरी महामती। विश्वतश्चक्षु इया श्रुती। तयाचिया व्याप्ती। रूप केलें ॥ ८८४ ॥
वांचूनि हस्त नेत्र पाये। हें भाष तेथ कें आहे ?। सर्व शून्याचा न साहे। निष्कर्षु जें ॥ ८८५ ॥
पैं कल्लोळातें कल्लोळें। ग्रसिजत असे ऐसें कळे। परी ग्रसितें ग्रासावेगळें। असे काई ? ॥ ८८६ ॥
तैसें साचचि जें एक। तेथ कें व्याप्यव्यापक ?। परी बोलावया नावेक। करावें लागे ॥ ८८७ ॥
पैं शून्य जैं दावावें जाहलें। तैं बिंदुलें एक पाहिजे केलें। तैसें अद्वैत सांगावें बोलें। तैं द्वैत कीजे ॥ ८८८ ॥
एऱ्हवीं तरी पार्था। गुरुशिष्यसत्पथा। आडळु पडे सर्वथा। बोल खुंटे ॥ ८८९ ॥
म्हणौनि गा श्रुती। द्वैतभावें अद्वैतीं। निरूपणाची वाहती। वाट केली ॥ ८९० ॥
तेंचि आतां अवधारीं। इये नेत्रगोचरें आकारीं। तें ज्ञेय जयापरी। व्यापक असे ॥ ८९१ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

तरी तें गा किरीटी ऐसें। अवकाशीं आकाश जैसें। पटीं पटु होऊनि असे। तंतु जेवीं ॥ ८९२ ॥
उदक होऊनि उदकीं। रसु जैसा अवलोकीं। दीपपणें दीपकीं। तेज जैसें ॥ ८९३ ॥
कर्पूरत्वें कापुरीं। सौरभ्य असे जयापरी। शरीर होऊनि शरीरीं। कर्म जेवीं ॥ ८९४ ॥
किंबहुना पांडवा। सोनेंचि सोनयाचा रवा। तैसें जें या सर्वां। सर्वांगीं असे ॥ ८९५ ॥
परी रवेपणामाजिवडे। तंव रवा ऐसें आवडे। वांचूनि सोनें सांगडें। सोनया जेवीं ॥ ८९६ ॥
पैं गा वोघुचि वांकुडा। परि पाणी उजू सुहाडा। वन्हि आला लोखंडा। लोह नव्हे कीं ॥ ८९७ ॥
घटाकारें वेंटाळें। तेथ नभ गमे वाटोळें। मठीं तरी चौफळें। आये दिसे ॥ ८९८ ॥
तरि ते अवकाश जैसें। नोहिजतीचि कां आकाशें। जें विकार होऊनि तैसें। विकारी नोहे ॥ ८९९ ॥
मन मुख्य इंद्रियां। सत्त्वादि गुणां ययां-। सारिखें ऐसें धनंजया। आवडे कीर ॥ ९०० ॥
पैं गुळाची गोडी। नोहे बांधया सांगडी। तैसीं गुण इंद्रियें फुडीं। नाहीं तेथ ॥ ९०१ ॥
अगा क्षीराचिये दशे। घृत क्षीराकारें असे। परी क्षीरचि नोहे जैसें। कपिध्वजा ॥ ९०२ ॥
तैसें जें इये विकारीं। विकार नोहे अवधारीं। पैं आकारा नाम भोंवरी। येर सोने तें सोनें ॥ ९०३ ॥
इया उघड मऱ्हाटिया। तें वेगळेपण धनंजया। जाण गुण इंद्रियां-। पासोनियां ॥ ९०४ ॥
नामरूपसंबंधु। जातिक्रियाभेदु। हा आकारासीच प्रवादु। वस्तूसि नाहीं ॥ ९०५ ॥
तें गुण नव्हे कहीं। गुणा तया संबंधु नाहीं। परी तयाच्याचि ठायीं। आभासती ॥ ९०६ ॥
येतुलेयासाठीं। संभ्रांताच्या पोटीं। ऐसें जाय किरीटी। जे हेंचि धरी ॥ ९०७ ॥

तरी तें गा धरणें ऐसें। अभ्रातें जेवीं आकाशें। कां प्रतिवदन जैसें। आरसेनी ॥ १०८॥
नातरी सूर्य प्रतिमंडल। जैसेनि धरी सलिल। कां रश्मिकरीं मृगजळ। धरिजे जेवीं ॥ १०९॥
तैसें गा संबंधेंवीण। यया सर्वांतें धरी निर्गुण। परी तें वायां जाण। मिथ्यादृष्टी ॥ ११०॥
आणि यापरी निर्गुणें। गुणातें भोगणें। रंका राज्य करणें। स्वप्नीं जैसें ॥ १११॥
म्हणौनि गुणाचा संगु। अथवा गुणभोगु। हा निर्गुणीं लागु। बोलों नये ॥ ११२॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्षमत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ १५॥

जें चराचर भूतां-। माजीं असे पंडुसुता। नाना वन्हीं उष्णता। अभेदें जैसी ॥ ११३॥
तैसेनि अविनाशभावें। जें सूक्ष्मदशे आघवें। व्यापूनि असे तें जाणावें। ज्ञेय एथ ॥ ११४॥
जें एक आंतुबाहेरी। जें एक जवळ दुरी। जें एकवांचूनि परी। दुजीं नाहीं ॥ ११५॥
क्षीरसागरींची गोडी। माजीं बहु थडिये थोडी। हें नाहीं तया परवडी। पूर्ण जें गा ॥ ११६॥
स्वेदजादिप्रभृती। वेगळाल्यां भूतीं। जयाचिये अनुस्यूतीं। खोमणें नाहीं ॥ ११७॥
पैं श्रोते मुखटिळका। घटसहस्रा अनेकां-। माजीं बिंबोनि चंद्रिका। न भेदे जेवीं ॥ ११८॥
नाना लवणकणाचिये राशी। क्षारता एकचि जैसी। कां कोडी एकीं ऊसीं। एकचि गोडी ॥ ११९॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितं ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६॥

तैसें अनेकीं भूतजातीं। जें आहे एकी व्याप्ती। विश्वकार्या सुमती। कारण जें गा ॥ १२०॥
म्हणौनि हा भूताकारु। जेथोनि तेंचि तया आधारु। कल्लोळा सागरु। जियापरी ॥ १२१॥
बाल्यादि तिन्हीं वयसीं। काया एकचि जैसी। तैसें आदिस्थितिग्रासीं। अखंड जें ॥ १२२॥
सायंप्रातर्मध्यान। होतां जातां दिनमान। जैसें कां गगन। पालटेना ॥ १२३॥
अगा सृष्टिवेळे प्रियोत्तमा। जया नांव म्हणती ब्रह्मा। व्याप्ति जें विष्णुनामा। पात्र जाहलें ॥ १२४॥
मग आकारु हा हारपे। तेव्हां रुद्र जें म्हणिपे। तेंही गुणत्रय जेव्हां लोपे। तैं जें शून्य ॥ १२५॥
नभाचें शून्यत्व गिळून। गुणत्रयातें नुरऊन। तें शून्य तें महाशून्य। श्रुतिवचनसंमत ॥ १२६॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विस्थितम् ॥ १७॥

जें अग्नीचें दीपन। जें चंद्राचें जीवन। सूर्याचे नयन। देखती जेणें ॥ १२७॥
जयाचेनि उजियेडें। तारांगण उभडें। महातेज सुरवाडें। राहाटे जेणें ॥ १२८॥
जें आदीची आदी। जें वृद्धीची वृद्धी। बुद्धीची जे बुद्धी। जीवाचा जीवु ॥ १२९॥
जें मनाचें मन। जें नेत्राचे नयन। कानाचे कान। वाचेची वाचा ॥ १३०॥
जें प्राणाचा प्राण। जें गतीचे चरण। क्रियेचें कर्तेपण। जयाचेनि ॥ १३१॥

आकारु जेणें आकारे। विस्तारु जेणें विस्तारे। संहारु जेणें संहारे। पंडुकुमरा ॥ १३२॥
जें मेदिनीची मेदिनी। जें पाणी पिऊनि असे पाणी। तेजा दिवेलावणी। जेणें तेजें ॥ १३३॥
जें वायूचा श्वासोश्वासु। जें गगनाचा अवकाशु। हें असो आघवाची आभासु। आभासे जेणें ॥ १३४॥
किंबहुना पांडवा। जें आघवेंचि असे आघवा। जेथ नाहीं रिगावा। द्वैतभावासी ॥ १३५॥
जें देखिलियाचिसवें। दृश्य द्रष्टा हें आघवें। एकवाट कालवे। सामरस्यें ॥ १३६॥
मग तेंचि होय ज्ञान। ज्ञाता ज्ञेय हन। ज्ञानें गमिजे स्थान। तेंहि तेंची ॥ १३७॥
जैसें सरलियां लेख। आंख होती एक। तैसें साध्यसाधनादिक। ऐक्यासि ये ॥ १३८॥
अर्जुना जिये ठायीं। न सरे द्वैताची वही। हें असो जें हृदयीं। सर्वांच्या असे ॥ १३९॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८॥

एवं तुजपुढां। आदीं क्षेत्र सुहाडा। दाविलें फाडोवाडां। विवंचुनी ॥ १४०॥
तैसेंचि क्षेत्रापाठीं। जैसेनि देखसी दिठी। तें ज्ञानही किरीटी। सांगितलें ॥ १४१॥
अज्ञानाही कौतुकें। रूप केलें निकें। जंव आयणी तुझी टेंके। पुरे म्हणे ॥ १४२॥
आणि आतां हें रोकडें। उपपत्तीचेनि पवाडें। निरूपिलें उघडें। ज्ञेय पैं गा ॥ १४३॥
हे आघवीच विवंचना। बुद्धी भरोनि अर्जुना। मत्सिद्धिभावना। माझिया येती ॥ १४४॥
देहादि परिग्रहीं। संन्यासु करूनियां जिहीं। जीवु माझ्या ठाईं। वृत्तिकु केला ॥ १४५॥
ते मातें किरीटी। हेंचि जाणौनियां शेवटीं। आपणपयां साटोवाटीं। मीचि होती ॥ १४६॥
मीचि होती परी। हे मुख्य गा अवधारीं। सोहोपी सर्वांपरी। रचिलीं आम्हीं ॥ १४७॥
कडां पायरी कीजे। निराळीं माचु बांधिजे। अथावीं सुइजे। तरी जैसी ॥ १४८॥
एऱ्हवीं अवघेंचि आत्मा। हें सांगों जरी वीरोत्तमा। परी तुझिया मनोधर्मा। मिळेल ना ॥ १४९॥
म्हणौनि एकचि संचलें। चतुर्धा आम्हीं केलें। जें अदळपण देखिलें। तुझिये प्रज्ञे ॥ १५०॥
पैं बाळ जैं जेवविजे। तैं घांसु विसा ठायीं कीजे। तैसें एकचि हेंचतुर्व्याजें। कथिलें आम्हीं ॥ १५१॥
एक क्षेत्र एक ज्ञान। एक ज्ञेय एक अज्ञान। हे भाग केले अवधान। जाणौनि तुझें ॥ १५२॥
आणि ऐसेनही पार्था। जरी हा अभिप्रावो तुज हाता। नये तरी हे व्यवस्था। एक वेळ सांगों ॥ १५३॥
आतां चौठायीं न करूं। एकही म्हणौनि न सरूं। आत्मानात्मया धरूं। सरिसा पाडु ॥ १५४॥
परि तुवां येतुलें करावें। मागों तें आम्हां देआवें। जे कानचि नांव ठेवावें। आपण पैं गा ॥ १५५॥
या श्रीकृष्णाचिया बोला। पार्थु रोमांचितु जाहला। तेथ देवो म्हणती भला। उचंबळेना ॥ १५६॥
ऐसेनि तो येतां वेगु। धरूनि म्हणे श्रीरंगु। प्रकृतिपुरुषविभागु। परिसें सांगों ॥ १५७॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९॥

जया मार्गातें जगीं। सांख्य म्हणती योगी। जयाचिये भाटिवेलागीं। मी कपिल जाहलों ॥ १५८॥
तो आइक निर्दोखु। प्रकृतिपुरुषविवेकु। म्हणे आदिपुरुखु। अर्जुनातें ॥ १५९॥

तरी पुरुष अनादि आथी। आणि तैंचि लागोनि प्रकृति। संसरिसी दिवोराती। दोनी जैसी ॥ ९६०॥
कां रूप नोहे वायां। परी रूपा लागली छाया। निकणु वाढे धनंजया। कणेंसीं कोंडा ॥ ९६१॥
तैसीं जाण जवटें। दोन्हीं इयें एकवटे। प्रकृतिपुरुष प्रगटें। अनादिसिद्धें ॥ ९६२॥
पैं क्षेत्र येणें नांवें। जें सांगितलें आघवें। तेंचि एथ जाणावें। प्रकृति हे गा ॥ ९६३॥
आणि क्षेत्रज्ञ ऐसें। जयातें म्हणितलें असे। तो पुरुष हें अनारिसे। न बोलों घेई ॥ ९६४॥
इयें आनानें नांवें। परी निरूप्य आन नोहे। हें लक्षण न चुकावें। पुढतपुढती ॥ ९६५॥
तरी केवळ जे सत्ता। तो पुरुष गा पंडुसुता। प्रकृतीतें समस्तां। क्रिया नाम ॥ ९६६॥
बुद्धि इंद्रियें अंतःकरण। इत्यादि विकारभरण। आणि ते तिन्ही गुण। सत्त्वादिक ॥ ९६७॥
हा आघवाचि मेळावा। प्रकृती जाहला जाणावा। हेचि हेतु संभवा। कर्माचिया ॥ ९६८॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २०॥

तेथ इच्छा आणि बुद्धि। घडवी अहंकारेंसीं आधीं। मग तिया लाविती वेधीं। कारणाच्या ॥ ९६९॥
तेंचि कारण ठाकावया। जें सूत्र धरणें उपाया। तया नांव धनंजया। कार्य पैं गा ॥ ९७०॥
आणि इच्छा मदाच्या थावीं। लागली मनातें उठवी। तें इंद्रियें राहाटवी। हें कर्तृत्व पैं गा ॥ ९७१॥
म्हणौनि तीन्ही या जाणा। कार्यकर्तृत्वकारणा। प्रकृति मूळ हे राणा। सिद्धांचा म्हणे ॥ ९७२॥
एवं तिहींचेनि समवायें। प्रकृति कर्मरूप होये। परी जया गुणा वाढे त्राये। त्याचि सारिखी ॥ ९७३॥
जें सत्त्वगुणें अधिष्ठिजे। तें सत्कर्म म्हणिजे। रजोगुणें निफजे। मध्यम तें ॥ ९७४॥
जें कां केवळ तमें। होती जियें कर्मैं। निषिद्धें अधमें। जाण तियें ॥ ९७५॥
ऐसेनि संतासंतें। कर्मैं प्रकृतीस्तव होतें। तयापासोनि निर्वाळतें। सुखदुःख गा ॥ ९७६॥
असंतीं दुःख उपजे। सत्कर्मीं सुख निफजे। तया दोहींचा बोलिजे। भोगु पुरुषा ॥ ९७७॥
सुखदुःखें जंववरी। निफजती साचोकारीं। तंव प्रकृति उद्यमु करी। पुरुषु भोगी ॥ ९७८॥
प्रकृतिपुरुषांची कुळवाडी। सांगतां असंगडी। जे आंबुली जोडी। आंबुला खाय ॥ ९७९॥
आंबुला आंबुलिये। संगती ना सोये। कीं आंबुली जग विये। चोज ऐका ॥ ९८०॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुण संगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१॥

जे अनंगु तो पेंधा। निकवडा नुसधा। जीर्णु अतिवृद्धा-। पासोनि वृद्धु ॥ ९८१॥
तया आडनांव पुरुषु। एऱ्हवीं स्त्री ना नपुंसकु। किंबहुना एकु। निश्चयो नाहीं ॥ ९८२॥
तो अचक्षु अश्रवणु। अहस्तु अचरणु। रूप ना वर्णु। नाम आथी ॥ ९८३॥
अर्जुना कांहींचि जेथ नाहीं। तो प्रकृतीचा भर्ता पाहीं। कीं भोगणें ऐसयाही। सुखदुःखांचें ॥ ९८४॥
तो तरी अकर्ता। उदासु अभोक्ता। परी इया पतिव्रता। भोगविजे ॥ ९८५॥
जियेतें अळुमाळु। रूपागुणाचा चाळढाळु। ते भलतैसाही खेळु। लेखा आणी ॥ ९८६॥
मा इये प्रकृती तंव। गुणमयी हेंचि नांव। किंबहुना सावेव। गुण तेचि हे ॥ ९८७॥

हे प्रतिक्षणीं नीत्य नवी। रूपा गुणाचीच आघवी। जडातेंही माजवी। इयेचा माजु ॥ ९८८॥
नामें इयें प्रसिद्धें। स्नेहो इया स्निग्धें। इंद्रियें प्रबुद्धें। इयेचेनि ॥ ९८९॥
कायि मन हें नपुंसक। कीं ते भोगवी तिन्ही लोक। ऐसें ऐसें अलौकिक। करणें इयेचें ॥ ९९०॥
हे भ्रमाचे महाद्वीप। व्याप्तीचें रूप। विकार उमप। इया केले ॥ ९९१॥
हे कामाची मांडवी। हे मोहवनींची माधवी। इये प्रसिद्धचि दैवी। माया हे नाम ॥ ९९२॥
हे वाङ्मयाची वाढी। हे साकारपणाची जोडी। प्रपंचाची धाडी। अभंग हे ॥ ९९३॥
कळा एथुनि जालिया। विद्या इयेच्या केलिया। इच्छा ज्ञान क्रिया। वियाली हे ॥ ९९४॥
हे नादाची टांकसाळ। हे चमत्काराचें वेळाउळ। किंबहुना सकळ। खेळु इयेचा ॥ ९९५॥
जे उत्पत्ति प्रलयो होत। ते इयेचे सायंप्रात। हें असो अद्भुत। मोहन हे ॥ ९९६॥
हे अद्वयाचें दुसरें। हे निःसंगाचें सोयरे। निराळेंसि घरें। नांदत असे ॥ ९९७॥
इयेतें येतुलावरी। सौभाग्यव्याप्तीची थोरी। म्हणौनि तया आवरी। अनावरातें ॥ ९९८॥
तयाच्या तंव ठायीं। निपटूनि कांहींचि नाहीं। कीं तया आघवेहीं। आपणचि होय ॥ ९९९॥
तया स्वयंभाची संभूती। तया अमूर्ताची मूर्ती। आपण होय स्थिती। ठावो तया ॥ १०००॥
तया अनार्ताची आर्ती। तया पूर्णाची तृप्ती। तया अकुळाची जाती-। गोत होय ॥ १००१॥
तया अचर्चाचें चिन्ह। तया अपाराचें मान। तया अमनस्काचें मन। बुद्धीही होय ॥ १००२॥
तया निराकाराचा आकारु। तया निर्व्यापाराचा व्यापारु। निरहंकाराचा अहंकारु। होऊनि ठाके ॥ १००३॥
तया अनामाचें नाम। तया अजाचें जन्म। आपण होय कर्म-। क्रिया तया ॥ १००४॥
तया निर्गुणाचे गुण। तया अचरणाचे चरण। तया अश्रवणाचे श्रवण। अचक्षूचे चक्षु ॥ १००५॥
तया भावातीताचे भाव। तया निरवयवाचे अवयव। किंबहुना होय सर्व। पुरुषाचें हे ॥ १००६॥
ऐसेनि इया प्रकृती। आपुलिया सर्व व्याप्ती। तया अविकारातें विकृती-। माजीं कीजे ॥ १००७॥
तेथ पुरुषत्व जें असे। तें ये इये प्रकृतिदशे। चंद्रमा अंवसे। पडिला जैसा ॥ १००८॥
विदळ बहु चोखा। मीनलिया वाला एका। कसु होय पांचका। जयापरी ॥ १००९॥
कां साधूतें गोंधळी। संचारोनि सुये मैळी। नाना सुदिनाचा आभाळीं। दुर्दिनु कीजे ॥ १०१०॥
जेवीं पय पशूच्या पोटीं। कां वन्हि जैसा काष्ठीं। गुंडूनि घेतला पटीं। रत्नदीपु ॥ १०११॥
राजा पराधीनु जाहला। कां सिंहु रोगें रुंधला। तैसा पुरुष प्रकृती आला। स्वतेजा मुके ॥ १०१२॥
जागता नरु सहसा। निद्रा पाडूनि जैसा। स्वप्नींचिया सोसा। वश्यु कीजे ॥ १०१३॥
तैसें प्रकृति जालेपणें। पुरुषा गुण भोगणें। उदास अंतुरीगुणें। आतुडे जेवीं ॥ १०१४॥
तैसें अजा नित्या होये। आंगीं जन्ममृत्यूचे घाये। वाजती जैं लाहे। गुणसंगातें ॥ १०१५॥
परि तें ऐसें पंडुसुता। तातलें लोह पिटितां। जेवीं वन्हीसीचि घाता। बोलती तया ॥ १०१६॥
कां आंदोळलिया उदक। प्रतिभा होय अनेक। तें नानात्व म्हणती लोक। चंद्रीं जेवीं ॥ १०१७॥
दर्पणाचिया जवळिका। दुजेपण जैसें ये मुखा। कां कुंकुमें स्फटिका। लोहितत्व ये ॥ १०१८॥
तैसा गुणसंगमें। अजन्मा हा जन्मे। पावतु ऐसा गमे। एऱ्हवीं नाहीं ॥ १०१९॥
अधमोत्तमा योनी। यासि ऐसिया मानी। जैसा संन्यासी होय स्वप्नीं। अंत्यजादि जाती ॥ १०२०॥
म्हणौनि केवळा पुरुषा। नाहीं होणें भोगणें देखा। येथ गुणसंगुचि अशेखा-। लागीं मूळ ॥ १०२१॥

उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।

परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः ॥ २२॥

हा प्रकृतिमाजीं उभा। परी जुई जैसा वोथंबा। इया प्रकृति पृथ्वी नभा। तेतुला पाडु ॥ १०२२॥
प्रकृतिसरितेच्या तटीं। मेरु होय हा किरीटी। माजीं बिंबे परी लोटीं। लोटों नेणे ॥ १०२३॥
प्रकृति होय जाये। हा तो असतुचि आहे। म्हणौनि आब्रह्माचें होये। शासन हा ॥ १०२४॥
प्रकृति येणें जिये। याचिया सत्ता जग विये। इयालागीं इये। वरयेतु हा ॥ १०२५॥
अनंतें काळें किरीटी। जिया मिळती इया सृष्टी। तिया रिगती ययाच्या पोटीं। कल्पांतसमयीं ॥ १०२६॥
हा महद्ब्रह्मगोसावी। ब्रह्मगोळ लाघवी। अपारपणें मवी। प्रपंचातें ॥ १०२७॥
पैं या देहामाझारीं। परमात्मा ऐसी जे परी। बोलिजे तें अवधारीं। ययातेंचि ॥ १०२८॥
अगा प्रकृतिपरौता। एकु आथी पंडुसुता। ऐसा प्रवादु तो तत्त्वता। पुरुषु हा पैं ॥ १०२९॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ २३॥

जो निखळपणें येणें। पुरुषा यया जाणे। आणि गुणांचें करणें। प्रकृतीचें तें ॥ १०३०॥
हें रूप हे छाया। पैल जळ हे माया। ऐसा निवाडु धनंजया। जेवीं कीजे ॥ १०३१॥
तेणें पाडें अर्जुना। प्रकृतिपुरुषविवंचना। जयाचिया मना। गोचर जाहली ॥ १०३२॥
तो शरीराचेनि मेळें। करूं कां कर्मैं सकळें। परी आकाश धुई न मैळे। तैसा असे ॥ १०३३॥
आथिलेनि देहें। जो न घेपे देहमोहें। देह गेलिया नोहे। पुनरपि तो ॥ १०३४॥
ऐसा तया एकु। प्रकृतिपुरुषविवेकु। उपकारु अलौकिकु। करी पैं गा ॥ १०३५॥
परी हाचि अंतरीं। विवेक भानूचिया परी। उदैजे तें अवधारीं। उपाय बहुत ॥ १०३६॥

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४॥

कोणी एकु सुभटा। विचाराचा आगिटां। आत्मानात्मकिटा। पुटें देउनी ॥ १०३७॥
छत्तीसही वानी भेद। तोडोनियां निर्विवाद। निवडिती शुद्ध। आपणपें ॥ १०३८॥
तया आपणपयाच्या पोटीं। आत्मध्यानाचिया दिठी। देखती गा किरीटी। आपणपेंचि ॥ १०३९॥
आणिक पैं दैवबगें। चित्त देती सांख्ययोगें। एक ते अंगलगें। कर्माचेनी ॥ १०४०॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणः ॥ २५॥

येणें येणें प्रकारें। निस्तरती साचोकारें। हें भवा भेउरें। आघवेंचि ॥ १०४१॥
परी ते करिती ऐसें। अभिमानु दवडूनि देशें। एकाचिया विश्वासें। टेंकती बोला ॥ १०४२॥
जे हिताहित देखती। हानि कणवा घेपती। पुसोनि शिणु हरिती। देती सुख ॥ १०४३॥

तयांचेनि मुखें जें निघे। तेतुलें आदरें चांगें। ऐकोनियां आंगें। मनें होती ॥ १०४४ ॥
तया ऐकणेयाचि नांवें। ठेविती गा आघवें। तया अक्षरांसीं जीवें। लोण करिती ॥ १०४५ ॥
तेही अंतीं कपिध्वजा। इया मरणार्णवसमाजा-। पासूनि निघती वोजा। गोमटिया ॥ १०४६ ॥
ऐसेसे हे उपाये। बहुवस एथें पाहें। जाणावया होये। एकी वस्तु ॥ १०४७ ॥
आतां पुरे हे बहुत। पैं सर्वार्थाचें मथित। सिद्धांतनवनीत। देऊं तुज ॥ १०४८ ॥
येतुलेनि पंडुसुता। अनुभव लाहाणा आयिता। येर तंव तुज होतां। सायास नाहीं ॥ १०४९ ॥
म्हणौनि ते बुद्धि रचूं। मतवाद हे खांचूं। सोलीव निर्वचूं। फलितार्थुची ॥ १०५० ॥

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

तरी क्षेत्रज्ञ येणें बोलें। तुज आपणपें जें दाविलें। आणि क्षेत्रही सांगितलें। आघवें जें ॥ १०५१ ॥
तया येरयेरांच्या मेळीं। होईजे भूतीं सकळीं। अनिलसंगें सलिलीं। कल्लोळ जैसे ॥ १०५२ ॥
कां तेजा आणि उखरा। भेटी जालिया वीरा। मृगजळाचिया पूरा। रूप होय ॥ १०५३ ॥
नाना धाराधरधारीं। झळंबलिया वसुंधरी। उठिजे जेवीं अंकुरीं। नानाविधीं ॥ १०५४ ॥
तैसें चराचर आघवें। जें कांहीं जीवु नावें। तें तों उभययोगें संभवे। ऐसें जाण ॥ १०५५ ॥
इयालागीं अर्जुना। क्षेत्रज्ञा प्रधाना-। पासूनि न होती भिन्ना। भूतव्यक्ती ॥ १०५६ ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७ ॥

पैं पटत्व तंतु नव्हे। तरी तंतूसीचि तें आहे। ऐसां खोलीं डोळां पाहें। ऐक्य हें गा ॥ १०५७ ॥
भूतें आघवींचि होती। एकाचीं एक आहाती। परी तूं प्रतीती। यांची घे पां ॥ १०५८ ॥
यांचीं नामेंही आनानें। अनारिसीं वर्तनें। वेषही सिनाने। आघवेयांचे ॥ १०५९ ॥
ऐसें देखोनि किरीटी। भेद सूसी हन पोटीं। तरी जन्माचिया कोटी। न लाहसी निघों ॥ १०६० ॥
पैं नानाप्रयोजनशीळें। दीर्घें वक्रें वर्तुळें। होती एकाचींच फळें। तुंबिणीयेचीं ॥ १०६१ ॥
होतु कां उजू वांकुडें। परी बोरीचे हें न मोडे। तैसीं भूतें अवघडें। परी वस्तु उजू ॥ १०६२ ॥
अंगारकणीं बहुवसीं। उष्णता समान जैशी। तैसा नाना जीवराशीं। परेशु असे ॥ १०६३ ॥
गगनभरी धारा। परी पाणी एकचि वीरा। तैसा या भूताकारा। सर्वांगीं तो ॥ १०६४ ॥
हें भूतग्राम विषम। परी वस्तू ते एथ सम। घटमठीं व्योम। जियापरी ॥ १०६५ ॥
हा नाशतां भूताभासु। एथ आत्मा तो अविनाशु। जैसा केयूरादिकीं कसु। सुवर्णाचा ॥ १०६६ ॥
एवं जीवधर्महीनु। जो जीवेंसीं अभिन्नु। देख तो सुनयनु। ज्ञानियांमाजीं ॥ १०६७ ॥
ज्ञानाचा डोळा डोळसां-। माजीं डोळसु तो वीरेशा। हे स्तुति नोहे बहुवसा। भाग्याचा तो ॥ १०६८ ॥

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८॥

जे गुणेंद्रिय धोकोटी। देह धातूंची त्रिकुटी। पांचमेळावा वोखटी। दारुण हे ॥ १०६९॥
हें उघड पांचवेउली। पंचधां आगी लागली। जीवपंचानना सांपडली। हरिणकुटी हे ॥ १०७०॥
ऐसा असोनि इये शरीरीं। कोण नित्यबुद्धीची सुरी। अनित्यभावाच्या उदरीं। दाटीचिना ॥ १०७१॥
परी इये देहीं असतां। जो नयेचि आपणया घाता। आणि शेखीं पंडुसुता। तेथेंचि मिळे ॥ १०७२॥
जेथ योगज्ञानाचिया प्रौढी। वोलांडूनियां जन्मकोडी। न निगों इया भाषा बुडी। देती योगी ॥ १०७३॥
जें आकाराचें पैल तीर। जें नादाची पैल मेर। तुर्येचें माजघर। परब्रह्म जें ॥ १०७४॥
मोक्षासकट गती। जेथें येती विश्रांती। गंगादि आपांपती। सरिता जेवीं ॥ १०७५॥
तें सुख येणेंचि देहें। पाय पाखाळणिया लाहे। जो भूतवैषम्यें नोहे। विषमबुद्धी ॥ १०७६॥
दीपांचिया कोडी जैसें। एकचि तेज सरिसें। तैसा जो असतुचि असे। सर्वत्र ईशु ॥ १०७७॥
ऐसेनि समत्वें पंडुसुता। जिये जो देखत साता। तो मरण आणि जीविता। नागवे फुडा ॥ १०७८॥
म्हणौनि तो दैवागळा। वानीत असों वेळोवेळां। जे साम्यसेजे डोळां। लागला तया ॥ १०७९॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथाऽऽत्मानंअकर्तारं स पश्यति ॥ २९॥

आणि मनोबुद्धिप्रमुखें। कर्मेंद्रियें अशेखें। करी प्रकृतीचि हें देखे। साच जो गा ॥ १०८०॥
घरींचीं राहटती घरीं। घर कांहीं न करी। अभ्र धांवे अंबरीं। अंबर तें उगें ॥ १०८१॥
तैसी प्रकृति आत्मप्रभा। खेळे गुणीं विविधारंभा। येथ आत्मा तो वोथंबा। नेणे कोण ॥ १०८२॥
ऐसेनि येणें निवाडें। जयाच्या जीवीं उजिवडें। अकर्तयातें फुडें। देखिलें तेणें ॥ १०८३॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३०॥

एऱ्हवीं तैंचि अर्जुना। होईजे ब्रह्मसंपन्ना। जैं या भूताकृती भिन्ना। दिसती एकी ॥ १०८४॥
लहरी जैसिया जळीं। परमाणुकणिका स्थळीं। रश्मीकरमंडळीं। सूर्याच्या जेवीं ? ॥ १०८५॥
नातरी देहीं अवेव। मनीं आघवेचि भाव। विस्फुलिंग सावेव। वन्हीं एकीं ॥ १०८६॥
तैसे भूताकार एकाचे। हें दिठी रिगे जैं साचें। तैंचि ब्रह्मसंपत्तीचें। तारूं लागे ॥ १०८७॥
मग जया तयाकडे। ब्रह्मेचि दिठी उघडे। किंबहुना जोडे। अपार सुख ॥ १०८८॥
येतुलेनि तुज पार्था। प्रकृतिपुरुषव्यवस्था। ठायें ठावो प्रतीतिपथा-। माजीं जाहली ? ॥ १०८९॥
अमृत जैसें ये चुळा। कां निधान देखिजे डोळां। तेतुला जिव्हाळा। मानावा हा ॥ १०९०॥
जी जाहलिये प्रतीती। घर बांधणें जें चित्तीं। तें आतां ना सुभद्रापती। इयावरी ॥ १०९१॥
तरी एक दोन्ही ते बोल। बोलिजती सखोल। देई मनातें वोल। मग ते घेई ॥ १०९२॥
ऐसें देवें म्हणितलें। मग बोलों आदरिलें। तेथें अवधानाचेचि केलें। सर्वांग येरें ॥ १०९३॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१॥

तरी परमात्मा म्हणिपे। तो ऐसा जाण स्वरूपें। जळीं जळें न लिंपे। सूर्यु जैसा ॥ १०९४॥
कां जे जळा आदीं पाठीं। तो असतुचि असे किरीटी। माजीं बिंबे तें दृष्टी। आणिकांचिये ॥ १०९५॥
तैसा आत्मा देहीं। आथि म्हणिपे हें कांहीं। साचें तरी नाहीं। तो जेथिंचा तेथें ॥ १०९६॥
आरिसां मुख जैसें। बिंबलिया नाम असे। देहीं वसणें तैसें। आत्मतत्त्वा ॥ १०९७॥
तया देहा म्हणती भेटी। हे सपायी निर्जीव गोठी। वारिया वाळुवे गांठी। केंही आहे ? ॥ १०९८॥
आगी आणि कापुसा। दोरा सुवावा कैसा। केउता सांदा आकाशा। पाषाणेंसी ? ॥ १०९९॥
एक निघे पूर्वेकडे। एक तें पश्चिमेकडे। तिये भेटीचेनि पाडें। संबंधु हा ॥ ११००॥
उजियेडा आणि अंधारेया। जो पाडु मृता उभेयां। तोचि गा आत्मया। देहा जाण ॥ ११०१॥
रात्री आणि दिवसा। कनका आणि कापुसा। अपाडु कां जैसा। तैसाचि यासी ॥ ११०२॥
देह तंव पांचांचें जालें। हें कर्माचें गुणीं गुंथले। भंवतसे चाकीं सूदलें। जन्ममृत्यूच्या ॥ ११०३॥
हें काळानळाच्या तोंडीं। घातली लोणियाची उंडी। माशी पांखु पाखडी। तंव हें सरे ॥ ११०४॥
हें विपायें आगींत पडे। तरी भस्म होऊनि उडे। जाहलें श्वाना वरपडें। तरी ते विष्ठा ॥ ११०५॥
या चुके दोहीं काजा। तरी होय कृमींचा पुंजा। हा परिणामु कपिध्वजा। कश्मलु गा ॥ ११०६॥
या देहाची हे दशा। आणि आत्मा तो एथ ऐसा। पैं नित्य सिद्ध आपैसा। अनादिपणें ॥ ११०७॥
सकळु ना निष्कळु। अक्रियु ना क्रियाशीळु। कृश ना स्थुळु। निर्गुणपणें ॥ ११०८॥
आभासु ना निराभासु। प्रकाशु ना अप्रकाशु। अल्प ना बहुवसु। अरूपपणें ॥ ११०९॥
रिता ना भरितु। रहितु ना सहितु। मूर्तु ना अमूर्तु। शून्यपणें ॥ १११०॥
आनंदु ना निरानंदु। एक ना विविधु। मुक्त ना बद्धु। आत्मपणें ॥ ११११॥
येतुला ना तेतुला। आइता ना रचिला। बोलता ना उगला। अलक्षपणें ॥ १११२॥
सृष्टीच्या होणा न रचे। सर्वसंहारें न वेंचे। आथी नाथी या दोहींचें। पंचत्व तो ॥ १११३॥
मवे ना चर्चे। वाढे ना खांचे। विटे ना वेंचे। अव्ययपणें ॥ १११४॥
एवं रूप पैं आत्मा। देहीं जें म्हणती प्रियोत्तमा। तें मठाकारें व्योमा। नाम जैसें ॥ १११५॥
तैसें तयाचिये अनुस्यूती। होती जाती देहाकृती। तो घे ना सांडी सुमती। जैसा तैसा ॥ १११६॥
अहोरात्रें जैशी। येती जाती आकाशीं। आत्मसत्तें तैसीं। देहें जाण ॥ १११७॥
म्हणौनि इयें शरीरीं। कांहीं करवीं ना करी। आयताही व्यापारीं। सज्ज न होय ॥ १११८॥
यालागीं स्वरूपें। उणा पुरा न घेपे। हें असो तो न लिंपे। देहीं देहा ॥ १११९॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते ॥ ३२॥

अगा आकाश कें नाहीं ?। हें न रिघेचि कवणे ठायीं ?। परी कायिसेनि कहीं। गादिजेना ॥ ११२०॥
तैसा सर्वत्र सर्व देहीं। आत्मा असतुचि असे पाहीं। संगदोषें एकेंही। लिप्त नोहे ॥ ११२१॥
पुढतपुढती एथें। हेंचि लक्षण निरुतें। जे जाणावें क्षेत्रज्ञातें। क्षेत्रविहीना ॥ ११२२॥

संसर्गें चेष्टिजे लोहें। परी लोह भ्रामकु नोहे। क्षेत्रक्षेत्रज्ञां आहे। तेतुला पाडु ॥ ११२३॥
दीपकाची अर्ची। राहाटी वाहे घरींची। परी वेगळीक कोडीची। दीपा आणि घरा ॥ ११२४॥
पैं काष्ठाच्या पोटीं। वन्हि असे किरीटी। परी काष्ठ नोहे या दृष्टी। पाहिजे हा ॥ ११२५॥
अपाडु नभा आभाळा। रवि आणि मृगजळा। तैसाचि हाही डोळां। देखसी जरी ॥ ११२६॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३॥

हें आघवेंचि असो एकु। गगनौनि जैसा अर्कु। प्रगटवी लोकु। नांवें नांवें ॥ ११२७॥
एथ क्षेत्रज्ञु तो ऐसा। प्रकाशकु क्षेत्राभासा। यावरुतें हें न पुसा। शंका नेघा ॥ ११२८॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च विदुर्यान्ति ते परम् ॥ ३४॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३अ ॥

शब्दतत्त्वसारज्ञा। पैं देखणें तेचि प्रज्ञा। जे क्षेत्रा क्षेत्रज्ञा। अपाडु देखे ॥ ११२९॥
इया दोहींचें अंतर। देखावया चतुर। ज्ञानियांचे द्वार। आराधिती ॥ ११३०॥
याचिलागीं सुमती। जोडिती शांतिसंपत्ती। शास्त्रांचीं दुभतीं। पोसिती घरीं ॥ ११३१॥
योगाचिया आकाशा। वळघिजे येवढाचि धिंवसा। याचियाचि आशा। पुरुषासि गा ॥ ११३२॥
शरीरादि समस्त। मानितातिं तृणवत। जीवें संतांचे होत। वाहणधरु ॥ ११३३॥
ऐसैसियापरी। ज्ञानाचिया भरोवरी। करूनियां अंतरीं। निरुतें होती ॥ ११३४॥
मग क्षेत्रक्षेत्रज्ञांचें। जें अंतर देखती साचें। ज्ञानें उन्मेख तयांचें। वोवाळूं आम्ही ॥ ११३५॥
आणि महाभूतादिकीं। प्रभेदलीं अनेकीं। पसरलीसे लटिकी। प्रकृति जे हे ॥ ११३६॥
जे शुकनळिकान्यायें। न लगती लागली आहे। हें जैसें तैसें होये। ठाउवें जयां ॥ ११३७॥
जैसी माळा ते माळा। ऐसींचि देखिजे डोळां। सर्पबुद्धि टवाळा। उखी होउनी ॥ ११३८॥
कां शुक्ति ते शुक्ती। हे साच होय प्रतीती। रुपेयाची भ्रांती। जाऊनियां ॥ ११३९॥
तैसी वेगळी वेगळेपणें। प्रकृति जे अंतःकरणें। देखती ते मी म्हणें। ब्रह्म होती ॥ ११४०॥
जें आकाशाहूनि वाड। जें अव्यक्ताची पैल कड। जें भेटलिया अपाडा पाड। पडों नेदी ॥ ११४१॥
आकारु जेथ सरे। जीवत्व जेथ विरे। द्वैत जेथ नुरे। अद्वय जें ॥ ११४२॥
तें परम तत्त्व पार्था। होती ते सर्वथा। जे आत्मानात्मव्यवस्था-। राजहंसु ॥ ११४३॥
ऐसा हा जी आघवा। श्रीकृष्णें तया पांडवा। उगाणा दिधला जीवा। जीवाचिया ॥ ११४४॥
येर कलशींचें येरीं। रिचविजे जयापरी। आपणपें तया श्रीहरी। दिधलें तैसें ॥ ११४५॥
आणि कोणा देता कोण। तो नर तैसा नारायण। वरी अर्जुनातें श्रीकृष्ण। हा मी म्हणे ॥ ११४६॥
परी असो तें नाथिलें। न पुसतां कां मी बोलें। किंबहुना दिधलें। सर्वस्व देवें ॥ ११४७॥

कीं तो पार्थु जी मनीं। अझुनी तृप्ती न मनी। अधिकाधिक उतान्ही। वाढवीतु असे ॥ ११४८॥
स्नेहाचिया भरोवरी। आंबुथिला दीपु घे थोरी। चाड अर्जुना अंतरीं। परिसतां तैसी ॥ ११४९॥
तेथ सुगरिणी आणि उदारे। रसज्ञ आणि जेवणारे। मिळती मग अवतरे। हातु जैसा ॥ ११५०॥
तैसें जी होतसे देवा। तया अवधानाचिया लवलवा। पाहतां व्याख्यान चढलें थांवा। चौगुणें वरी ॥ ११५१॥
सुवायें मेघु सांवरे। जैसा चंद्रें सिंधु भरे। तैसा मातुला रसु आदरें। श्रोतयांचेनि ॥ ११५२॥
आतां आनंदमय आघवें। विश्व कीजेल देवें। तें रायें परिसावें। संजयो म्हणे ॥ ११५३॥
एवं जे महाभारतीं। श्रीव्यासें आप्रांतमती। भीष्मपर्वसंगतीं। म्हणितली कथा ॥ ११५४॥
तो कृष्णार्जुनसंवादु। नागरीं बोलीं विशदु। सांगोनि दाऊं प्रबंधु। वोवियेचा ॥ ११५५॥
नुसधीचि शांतिकथा। आणिजेल कीर वाक्पथा। जे शृंगाराच्या माथां। पाय ठेवी ॥ ११५६॥
दाऊं वेल्हाळे देशी नवी। जे साहित्यातें वोजावी। अमृतातें चुकी ठेवी। गोडिसेंपणें ॥ ११५७॥
बोल वोल्हावतेनि गुणें। चंद्रासि घे उमाणे। रसरंगीं भुलवणें। नादु लोपी ॥ ११५८॥
खेचरांचियाही मना। आणीन सात्त्विकाचा पान्हा। श्रवणासवें सुमना। समाधि जोडे ॥ ११५९॥
तैसा वाग्विलास विस्तारू। गीतार्थेंसी विश्व भरूं। आनंदाचें आवारूं। मांडूं जगा ॥ ११६०॥
फिटो विवेकाची वाणी। हो कानामनाची जिणी। देखो आवडे तो खाणी। ब्रह्मविद्येची ॥ ११६१॥
दिसो परतत्त्व डोळां। पाहो सुखाचा सोहळा। रिघो महाबोध सुकाळा-। माजीं विश्व ॥ ११६२॥
हें निफजेल आतां आघवें। ऐसें बोलिजेल बरवें। जें अधिष्ठिला असें परमदेवें। श्रीनिवृत्तीं मी ॥ ११६३॥
म्हणौनि अक्षरीं सुभेदीं। उपमा श्लोक कोंदाकोंदी। झाडा देईन प्रतिपदीं। ग्रंथार्थासी ॥ ११६४॥
हा ठावोवरी मातें। पुरतया सारस्वतें। केलें असे श्रीमंतें। श्रीगुरुरायें ॥ ११६५॥
तेणें जी कृपासावायें। मी बोलें तेतुलें सामाये। आणि तुमचिये सभे लाहें। गीता म्हणों ॥ ११६६॥
वरी तुम्हा संतांचे पाये। आजि मी लाधलों आहें। म्हणौनि जी नोहे। अटकु काहीं ॥ ११६७॥
प्रभु काश्मिरीं मुकें। नुपजे हें काय कौतुकें। नाहीं उणीं सामुद्रिकें। लक्ष्मीयेसी ॥ ११६८॥
तैसी तुम्हां संतांपासीं। अज्ञानाची गोठी कायसी। यालागीं नवरसीं। वरुषेन मी ॥ ११६९॥
किंबहुना आतां देवा। अवसरु मज देयावा। ज्ञानदेव म्हणे बरवा। सांगेन ग्रंथु ॥ ११७०॥
इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥

---

Encoded and proofread by
Chhaya Deo, Sharad Deo, and Vishwas Bhide.
Assisted by
Sunder Hattangadi, Ashwini Deo, and Shree Devi Kumar.

---

Please send corrections to sanskrit@cheerful.com
Last updated March 11, 2007